अनन्त श्रीजानकीवल्लभो विजयते तराम् ।

श्रीमते हनुमते नमः ।

सर्वेश्वरि श्रीचारुशीलायै नमः

❀ श्रीसद्गुरु श्रीचरणकमलेभ्यो नमः ❀

❀ अथ भूमिका प्रारम्भः ❀

---×---

अनन्त श्रीआचार्यदेव श्रीमधुकर महाराजजी की आज्ञा गत वर्ष में इस दीन पर हुई थी कि अनन्त श्रीजनकराजकिशोरी शरणजी महाराज (श्रीरसिकअलीजी) कृत श्रीआत्मसम्बन्धदर्पण पर भाषाटीका करके छपवा दो। उसी कृपारूपी आज्ञा ने ही यह आनन्दवर्द्धिनी टीका करवाया है एतावता उस कृपा का सदा जै-जैकार हो यह आत्मसम्बन्धदर्पण अनन्त श्रीरसिकअलीजी महाराज का निर्माण किया हुआ है। आपका परिचय देना क्या है अर्थात् सूर्यभगवान् के परिचय के लिए दीपक दिखाना है। आपकी कीर्ति यश जगत् विख्यात है आप सँस्कृत और भाषा मिलाकर चौबिस ग्रंथ के रचयिता हैं और सब ग्रन्थ श्रुति स्मृति के सार हैं। चौपाई श्रीमानसजी—

सुमति भूमिथल हृदय अगाधू। बेद पुराण उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगल कारी॥

आपका कुछ शुभ चरित्र अनन्त श्रीरसिकशिरोमणि

श्रीगुणलप्रिया महाराजजी कृत श्रीरसिकप्रकाश भक्तमाल में प्रकाशित है उसीका कुछ दिग्दर्शन इस भूमिका में कराया गया है।

छप्पय—सब भांति भलाई प्रिय कथा श्रीजनककिशोरीशरण की।
सब रसिकन सुखदैन भलो सिद्धान्त विचार्यो ॥
महल अटारी झुकी नैन प्रत्यक्ष निहार्यो।
रची अपार अनेक कथा गत ताहि सुधारी।
कहु मिथिला कहु अवध महल कुंजन के चारी ॥
रसराज कथा बहु ग्रन्थ रचि जिज्ञासु दृढ करण की।
सब भांति भलाई प्रिय कथा श्रीजनककिशोरीशरणकी ॥

यद्यपि आपके विषय में टीका कवित्त बहुत हैं परंत विस्तार के भय से केवल उसका सारांश लिखा जाता है। आपका पंचभौतिक शरीर श्रीसुदामापुरी का था और आप नागर ब्राह्मण वंशोद्भव थे। बालापन से ही आपको विषय वैराग्य था। किसी संत के साथ आप श्रीअयोध्याजी में आए और महल में रात को रह गए। श्रीललीलालजी ने रात्रिमे स्वप्न दिखाये और प्रातःकाल परमानन्द श्रीअवधराजराघवदासजी महाराज आपको श्रीरामानन्दीय वैष्णव पंचसंस्कार किए और अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धि देखकर विद्याभ्यास मे लगा दिये (अल्प काल विद्या बहु पाई) क्योंकि आप महान् संस्कारी थे पश्चात् श्रीकिशोरीजू की प्रेरणासे आपके हृदय में रसराज शृङ्गाररस का भाव उत्पन्न हुआ आप अपने श्रीआचार्यदेव से प्रार्थनापूर्वक कहे श्रीआचार्यदेवजी अत्यन्त प्रसन्न मन से और अत्यन्त करुणा वरुणालय श्रीरसिकाखिजरा श्रीकरु

णासिन्धुजी महाराज के श्रीचरणकमल में स्वयं अपने साथ लेआ करके आपको समर्पण कर दिये श्रीकरुणासिंधुजी महराज अत्यंत प्रशन्न होके आपको रसराज श्रृङ्गाररस का सम्बन्धपत्र दिये और भावभावना उपदेश किये बहुत काल तक श्रीआचार्य श्रीसद्गुरु महाराजके सन्निधि सतसंग में आप रहे एक दिन आपको साक्षात् श्रीकनकभवन का दर्शन हुआ अनेक अटारी और कुंजयुक्त और अनन्त सखियां दिखाई पड़ीं और श्रीयुगलसरकार मध्य में विराजमान थे। श्रीरसिकप्रकाश भक्तमाल टीका कवित्त—

करुणानिधान रसरीति परिपाटी देखि,
कृपासिन्धुजी से निज हिये की जनाई है।
रसिकअली सुनाम पायो रंग छायो हिये,
मानसी में महल गली की दृष्टि पाई है॥
श्रीकनकभवन सप्तआवरण कुंज रंग,
भवन निकुंज ज्योतिपुंज दरसाई है।
झुकी है अटारी मणि रतन संवारी,
प्रति मन्दिरमें आलिनकी भीर सरसाई है॥३१८

देखि सभा भवन प्रकाश चकचौंधी लागी,
दया दृग हेरि लली आली निज प्रेरी हैं।
आप बांह गही तत छिन यूथ यूथेश्वरी,
सनमुख लाई सो लिवाय छवि हेरी है॥
भूली देह सुधि अंग सात्विक जनायो,
चरणन शीश नायो परा रति मति घेरी है।

शीश कर फेरि अंक लीनी है उठाय,
हंसि दीनी है जनाय नई आई एक चेरी है॥३२॥

रसिकन रीति प्रीति लोक वेद बाहरी है।
ताते यह ठौर कथा थोरे में लखाई है॥

एक दिन श्रीकनकभवन का साक्षात आपको दर्शन हुआ सप्तआवरण युक्त अनेकों कुंज निकुंज तेजोमय महान प्रकाश युक्त जिसमें मणिरतन से संवारी अनेकों अटारी झुकी है। प्रति मन्दिर में झुंड के झुंड अलिन की शोभा सरसा रही है जब सभाभवन को आप देखे जहां श्रीयुगलसरकार विराजमान थे वह देखते ही उस तेजोमय प्रकाश से नेत्रों में चकचौंधी छागई आप बैठ गये उस समय श्रीस्वामिनीजी दयादृष्टि से आपको देखीं और अपने निज अली को प्रेरणा की कि जाव उन्हें लिवालावो तब यूथ यूथेश्वरी अर्थात सर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजी आपको बांह गहि के श्रीयुगलसरकार के सनमुख लेआईं और श्रीयुगलसरकार को नेत्र भर देखते ही आपका देह सुध भूल गई और अङ्ग २ में सात्विक दशा प्राप्त होगई और श्रीयुगल श्रीचरणकमल में आप भावानुसार शीश नवाए अर्थात प्रणाम किए परारति में आप छके हैं। श्रीयुगलसरकार आपको उठा के अङ्क में बैठा लिए श्रीकरकमलको शीश पर फेरे और हंसकर सबसे कहे कि एक नई सहचरि आज आई है इसके बाद जो आपको आनन्द हुआ सो अलेख है। और उसके बाद आप बड़े श्रद्धा और प्रेम से श्रीकनकभवन का निर्माण करवाये और उसमें अनेक उत्सव किये जिसका चिन्ह श्रीचरण-

पादुका आंगन में विराजमान है। उसके बाद आप कुछ दिन बुंदेलखण्ड में भ्रमण किये वहां के बहुत जीवों को कृतार्थ किए फिर श्रीअयोध्याजी में आये और बहुत दिनों तक वहां सत्संग का आनन्द हुआ। उस समय के आनन्द का लेखा को लगा सकता है जैसे गोस्वामी श्रीनाभाजी महाराज श्रीभक्तमाल में लिखे हैं कि छप्पय-चतुर महान्त दिग्गज चतुर भक्ति भूमि दाबे रहैं। अर्थात् चार महात्मा दिग्गज के तरह भक्ति भूमि को सुरक्षित रखे हैं। इसी तरह उस समय में अनन्त श्रीकरुणासिन्धुजी महाराज के चार साधक शिष्य उज्ज्वलरसराज श्रृंगाररस भूमि को बुद्धिपूर्वक सुरक्षित रखे। नाम--श्रीरसिकशिरोमणि श्रीयुगलप्रियाजी महाराज आप श्रीरसिकप्रकाश भक्तमाल तथा और भी अनेक पुस्तकों का रचना किए और रसराज की वर्षा वर्षा के अनन्त जीवों को कृतार्थ किए फिर श्रीरसिकमंडलामणी श्रीहरिदासजी महाराज आप अनेक ग्रन्थों पर संस्कृतभाष्य किये हैं जैसे श्रीरामतापनी पर और श्रीरामस्तवराज पर, छान्दोग्य उपनिषद् पर वह अभी छपा नहीं है और भी अनेक ग्रंथ आप के विद्यमान हैं फिर रसिकसुख वर्द्धिनी मानसि सेवा अष्टयाम निर्माणकर्ता श्रीप्रियासखीजी तथा चौबीसग्रन्थ निर्माणकर्ता श्रीरसिकअलीजी महाराज यह चार महात्मा श्रीकरुणासिन्धुजी के साधक शिष्य गुरुभाई रहे और आपके शिष्य प्रशिष्य अनेक हुए जिसमें परमहंस रसिकशिरमौर श्रीरामसेवकशरणजी महाराज श्रीकरुणासिन्धुजी के गद्दी को सुशोभित किये शिष्य साधकशिष्य मिलकर सब गुरुभाइयों में पारस्परिक अत्यन्तात्यन्त प्रेम अह्लाद था तथा रसराज वर्षाकर अनेक जीवों

का उद्धार किए कुछ दिन बीत जाने पर श्रीरसिकअलीजीमहाराज श्रीस्वामिनीजू की प्रेरणा से श्रीमिथिलापुरी को पधारे।

टीका कवित्त—लली बल राखि उर मिथिला सिधारे।

मानवती पाछे नायक ज्यों लाल संग चले हैं।
श्रीमिथिला की भूमि रमणीयता निहारि,
सुधि पाछिली बिहारि के रहस्य रंग रले हैं॥

बहुत दिन तक आप श्रीमिथिलाजी में चेत्र संन्यास से विराजमान रहे और सायंकाल चारबजे आपके यहां संत मंडली सत्संग के निमित्त नित्य पधारती रहीं बहुत दिन तक आप उस स्थान को सुशोभित किए रहे और अनेक जीवों का उद्धार किये जो स्थान श्रीरसिकनिवास स्थान से प्रसिद्ध है। श्रीरसिकअलीजी महाराज जब वहां बैठे तो एक सीमा बांध दिए और उस सीमा से बाहर नहीं गए वहां से सीधे श्रीललीलालके अखंडविहारस्थली श्रीसाकेतधाम ही को गए। आपके श्रीमहलयात्रा के टीकाकवित्त सियारामशरण के हेतु मुकुतावली सिद्धान्त की बनाई पाप मोह दलमले हैं॥ ऐसे ग्रन्थ चौबीस बनाये सन्त मन भाये जिनमें उपासना के तत्व धरे भले हैं॥ ३३१

कोई काव्यकला गानकला रस मूल कहै,
सब रस मूल सीताराम निरवारे हैं।
दम्पति उपासना के अंग जेते गाये लखि,
सीताराम रत्नमंजूषा में सब धारे हैं।
ललिजूने चारुशीला अली को जनायो सोई,

समै इन जाइबे को मनमें विचारे हे ।
लोक बिसरायो निज दिव्य तन पायो ताको
तेज यहां छायो आपु महल पधारे हैं ।

जब आपका श्रीमहलयात्रा का समय आया तब श्रीस्वामिनी जी सर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजी को जनाये कि श्रीरसिकअलीजीका अब लीलाविभूति से याने एकपाद विभूति से त्रिपादविभूति श्री साकेतमहल का आने का समय होगया आप जब इस पांच-भौतिक शरीर का परित्याग करके दिव्य शरीर धारण किए और दिव्य शिबिका पर आरूढ होकर दिव्यमहल को पधारे उससमय आकाश में महान् तेज का प्रकाश छा गया आकाश में बाजे बजे और पुष्प वृष्टि भई आपका श्रीमहलयात्रा रात्री में भया आप नित्य परिकर रहे अवतरित होके श्रीलीलाविभूति के प्राणियों को कृतार्थ करके फिर श्रीमहल को पधार गये । आपके निर्माण किए गये चौबीस ग्रन्थ अभी भी श्रीरसिकजनमात्र को कृतार्थ कररहे हैं एतावता आपकी कृपा का सदा जै-जैकार हो ।

आत्मसम्बन्धदर्पण का प्रतिपाद्यविषय सर्व प्रथम श्रीकृपादेवि का उदय तत्पश्चात् आचार्य्यदर्शन और आचार्य्य प्रपत्ति तत्पश्चात् प्रकृतिपुरुष विचार पूर्वक स्वरूप वर्णन और अधिकारी लक्षण तथा आचार्य्य द्वारा पंचसंस्कार वर्णन पुनः श्रीआचार्य्य द्वारा श्रीयुगलसरकार के श्रीचरणकमलमें आत्मसमर्पण पुनः आचार्य्य द्वारा भावनासम्बन्धोपदेश इत्यादि विषय है ।

श्री १०८ विद्वद्वर सन्तशिरोमणि पं० अखिलेश्वर दास जी महाराज ने बड़े उत्साह के साथ प्रूफ इत्यादि का संसाधन अपने अमूल्य समय देकर किये हैं एतावता आपको अनन्तानन्त धन्यवाद है और ईश्वरदासजी बड़े उत्साह पूर्वक इस ग्रन्थ के प्रूफ वगैरः प्रेस से लेआने में और छपवाने में बहुत परिश्रम किये हैं एतावता आपको कोटिशः धन्यवाद है।

भूलहो जाना मनुष्य का स्वाभाविक है एतावता जो कुछ इस टीका में तथा भूमिका में त्रुटिहोगई हो उसके लिये मैं विज्ञ जनो से क्षमाप्रार्थीहूँ सम्बन्ध के विषय में अनन्त श्री अग्रदेवाचार्य्यजी महाराजके दोहे—

विन संबन्ध के बातहूं पूछत है नहीं कोय
याते हेतु सुप्रेमके सम्बन्धहि हिय जोय ।१।
ताते ब्रह्मरू जीवके मीले विना संबन्ध
कबहुन सन्मुख होहिगे किये कोटि परबन्ध २।
रसही मय वह ब्रह्म हैं रसही मय वह जीव
मिलेविना सम्बन्ध के भोगत दुख अतीव ।३।
जैसे कन्या के पिता पति हिं करत संयोग
वैसे सद्गुरू ब्रह्मते जीवमिलावत योग ।४।
दूल्लह रामकुमार हैं दुलहीन है यह जीव
दोहुन के गठजोरि कर जीव मीलायोपीव ।५।
दोउ कन्या वर मेलसे जसभइ प्रीति अपार
बस काहूँसे नाभइ देखहु हिये विचार ।६।

यद्यपि कन्या के अहै कोटिन सुख घरमाहिं
यद्यपि पति बिनु जानति सहाऽोग समताहि।७
वैसाहि जीवहि बिनुमिलै, प्रितमराम, सुजान
कोटिन सुखजो पावहिं तौ, वह नर्क समान
यहां भिहै एक गांसियहु जानत सभी लाग
बिन सीता शरणागतो करन गहत वर योग ९।
याते सीता शरण करि श्रीसद्गुरु महराज
जोव मिलावत पियसों जो सबके शिरताज ।१०।
पंच भावमें जाहि जो पायोसद गुरु द्वार
दिन प्रति भाव शरीर से करय भावनाकार ११
जस जस भावा वेशसे भावित वपु पुष्टात।
तस तस स्थूलादिक तनु क्रमशः अति निवलात ।।१२।।
जस जस पुष्टी सर्पके भीतरके त्वच होत।
तस तस ऊपर की त्वचा सार रहित बिलगोत ।।१३।।
तैसेहि भाविक जननके दिनप्रति, भावाकार।
बढ़त स्वभावावेशते दिव्य सुवपु रसकार ।।१४।।
सच्चित् आनन्दमय वपु पाइ गयो पीय धाम
तहं, आचार्य्य से मिले पायो मन, अभिराम ।।१५।।
प्यार करी आचार्य्य पुनि लेगये दम्पति पासु।
दम्पति हिये लगाये जब को कहे आनन्द तासु ।।१६।।
जैसा जाको भाव है तैसइ दियो स्थान।
जिनके विभव विलोकि के कोटिन इन्द्र लजान ।।१७।।

यद्यपि जगमें बहुत हैं प्रभु मिलवे को उपाय।
तद्यपि भाव समान नहीं अप्र सो कही बजाय ॥१८॥

मेरो दोष देखो जिन आपनो सुभाव पेखो,
मेरी पीर, हरो बेगि अब श्रीचारुशीला।
जैसेइ स्वभाव शील सिय स्वामिनी को,
वैसेहि गुण रावरेइ कहत अखीला।
रीति पांवडेरन की बड़े करत छोटे तें,
हरत दुख दोष आप सुयस गहीला।
अबना अबेर करौ विनती या चित्त धरौ,
मिलावो सियासों अहो वसीला।

श्रीजानकीघाट निवासी रसिकाधिराज संतशिरोमणि परम वैराग्यवान माधुकरिवृत्तिस्थ अनन्त श्रीमधुकर श्रीसिया-शरणजी महाराज के श्रीचरणकमल रजोनुजीवी

पं० जानकीवल्लभशरणः।

❀ आत्मसम्बन्ध दर्पणम् ❀

❀ अनन्य श्रीजानकीवल्लभोविजयतेतराम् ❀
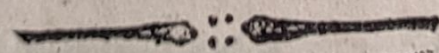
अनन्त श्री चारुशीलायैनमः	श्रीमतेहनुमतेनमः
श्रीमतेरामानन्दाचार्यायनमः	श्रीमतेअग्रदेवाचार्यायनमः
श्रीमतेदीनबन्धवेनमः	श्रीमतेकरुणासिन्धवेनमः
श्रीमत्यैरसिकअल्यैनमः	श्रीसद्गुरुश्रीचरणकमलेभ्योनमः

बन्दे श्रीचारुशीलायाः
पादयुग्मस्य रेणुकाम् ।
कृपया प्राप्यते यस्या
वैदेह्याः पादसेवनम् ॥

श्रीमती श्रीचारुशीलाजी के दोनों चरणकमलों की रेणुका को मैंनमस्कार करता हूँ क्योंकि जिस श्रीरेणुकाजी की कृपासे श्री विदेहराजतनया श्रीकिशोरीजी के चरणकमलों की सेवा प्राप्त होती है

अथात्मसम्बन्धदर्पणं लिख्यते तत्रप्रथमं यदा जीवस्यो त्तमसंस्काराणामुदयो भवति तदाऽविद्यामयसुखं दुःखरूपेण पश्यति तदातस्य निवृत्यर्थंम्विशेषज्ञानां संगं करोति-

श्रीग्रंथकार का वचन है आप चौबीस ग्रन्थका निर्माण किये हैं उसमें से अब आत्म सम्बन्ध दर्पण को लखते हैं संबध्नाति जीवां अनेन असौ सम्बन्धः अर्थात् जीवजिसके अच्छी तरह से बंध जाय उसे सम्बन्ध कहते हैं सचद्विविधः प्राकृतः अप्राकृत श्चेति वह सम्बन्ध दो प्रकारका होता है प्राकृत और अप्राकृत। प्राकृतसम्बन्ध बन्धन का हेतु होता है और अप्राकृत दिव्यसम्बन्ध मोक्ष का हेतु होता है इसपुस्तक में अप्राकृत सम्बन्ध का विषय है क्योंकि इसका नाम है "आत्म सम्बन्ध दर्पण" यहां आत्मशब्द परमात्म परक है आत्मनः सम्बन्धः आत्म सम्बन्धः अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा का जो अनादि सम्बन्ध है उस का यह पुस्तक दर्पण है अर्थात् उस का दिखाने वाला है।

सबसे पहले जब जीवका उत्तम संस्कारका उदय होता है तब अविद्यामय प्राकृत संसारी सुखों का दुःख मय देखने लगता है तब उसके हटाने के लिये महानुभाव महात्माओं का संग करता है—

अथ च विशेषज्ञदर्शनम् परम निर्मल चिन्तनस्थाने परम प्रसन्नस्थाने श्रीसीताराम मुद्रांकित उद्धर्व पुण्डादि युक्तः कंठे तुल

सिकामाल: श्रीजानकीवल्लभेति प्रतिज्ञणमुच्चरन्नष्टयामवीसे निष्ठो दयादि गुण युक्तः एतादृशं महात्मानं लब्ध्वा अञ्जलिना प्रणामं कृत्वा पृच्छति हे स्वामिन् अस्य जीवस्य यज्ञानायोनिषु बारम्बारं जन्म मरणं तस्य किम्बीजम् अथोत्तरम् मोह एव ।

(प्रश्न) मोहस्य किं रूपं उत्तरं सद्वस्तु विस्मरणं, असद्वस्तुषु सम्बन्धः ।

किम्सत्यं किमसत्यञ्च कृपां कृत्वा वद प्रभो ॥
संसाराद् उद्धर स्वामिन्त्वामहं नमामि पुनः पुनः ॥

उत्तरं—यदहं आत्मेति मन्यते गृहकुटुम्बादिषु स्वकीयत्वं मन्यते स मोहप्रभावः ।

सत्संग की इच्छा होने पर महानुभावों का दर्शन कहां होता है और उनका क्या लक्षण है और उन महात्माओंसे किसतरह से प्रश्न करना चाहिये सो दिखाते हैं ।

अत्यन्त निर्मल और एकान्त जिसस्थानको देखकर मन प्रसन्न होजाय उस स्थान में महानुभाव रहते हैं लक्षण श्रीसीता रामजीको जो मुद्रा है धनुष बाण इत्यादि उससे चिह्नित हों और ऊर्ध्व पुण्ड्रादि का धारण किये हों कंठ में श्रीतुलसीजीकी कंठी और माला हो और हरेक क्षणों श्रीजानकीवल्लभ इस युगलनाम का उच्चारण करते रहते हों और मानसी अष्टयाम सेवा में परननिष्ठहों दया आदि जो गुण हैं उनसे युक्त हों ऐसे महानुभाव महात्माको प्राप्तकर करवद्ध प्रणाम करके अर्थात्

साष्टांग दंडवत करके पूछे कि हे स्वामिन् इस जीव का अनेक योनियों में बारं बार जो जन्म मरण होता है उसका क्या कारण है ? (उत्तर) मोह ।

(प्रश्न) मोह का क्या स्वरूप है ?

(उत्तर) सत वस्तु जो श्रीयुगलसरकार हैं उनको भूल जाना उनके साथ सम्बन्ध नहीं करना और असत जो संसारी सम्बन्ध उसके साथ सम्बन्ध करना ।

(प्रश्न) सत्य क्या पदार्थ है ? और असत्य क्या है ? हे प्रभो दयालो कृपा कर इसे कहिए हे स्वामीजी मैं आपके श्रीचरणों में बार बार प्रणाम करता हूँ संसार सागर से हमारा उद्धार कीजिए ।

उत्तर— देह से जीवात्मा भिन्न पदार्थ है परन्तु अज्ञान वस देह को ही आत्मा मान लेना और देह सम्बन्धी गृह और परिवार आदि हैं उनमें अत्यन्त अपनापन होता है यही मोह का प्रभाव है ।

प्रश्नः— मोहस्य किं वीजम् ?

उत्तरम्— रजस्तमस्सत्वमयी सनातनी माया ।

प्रश्नः— मायाया नियन्ता कः ?

उत्तरम्— परम्ब्रह्म दाशरथिःश्रीरामचन्द्रः ।

प्रश्नः— मायाकृतो मोहः कथन्निवर्त्तते ?

उत्तरम्— ये सम्यक् प्रकारेण श्रीसीतारामतत्ववेत्तारः

सन्ति ते मुमुक्षुजीवान् ज्ञानविज्ञानोपदेशं कृत्वोचितसंस्कारम् आत्मनः समाश्रश्च कृत्वा प्रभोः शरणं ददति ।

प्रश्न— मोह का कारण क्या है ?

उत्तर— तमोगुणी रजोगुणी सतोगुणी सनातनी माया यह मिश्रित तत्व है ।

प्रश्न— माया का प्रेरक स्वामी कौन है ?

उत्तर— परब्रह्म दाशरथिश्रीरामभद्र जू ।

प्रश्न— माया से उत्पन्न मोह कैसे छूटता है ?

उत्तर— जो पूर्ण रूप से श्रीसीतारामजी के तत्व के ज्ञाता महानुभाव महात्मा गण हैं वे मुमुक्षु अर्थात पूर्ण मोक्ष की इच्छा वाले श्रद्धालु जीवों को प्रथम ज्ञान और विज्ञान का उपदेश कर उचित संस्कार करके उसकी आत्मा को श्रीप्रभु के शरण में जाने योग्य बना करके श्रीयुगलसरकार के शरणागती को प्राप्त करा देते है ।

इससे यह निश्चय हुआकि जीवको विना आचार्य्य के प्रभु की शरणागति नही होती है (श्रुतिः) आचार्य्यवान् पुरुषो वेद आचार्य्य निष्ठही पुरुष ब्रह्मतत्वको जानता है ।

इस विषयमें और भी प्रमाण देखिये -

ब्रह्मपुत्र देवर्षि श्रीनारदजी इतने विद्वान भी थे पर विना आचार्य्य के उनको ब्रह्मतत्वका ज्ञान नहीं हुआ आपने भगवान्

श्रीसनतकुमारजीसे जिज्ञासा कीथी उस समय श्रीसनतकुमारजी ने पूछा था कि आपका क्या २ पढ़ाहुआ है देवर्षिजी का उत्तर इसप्रकार है—

सहोवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम् ।

अर्थात् हे भगवन् ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्व वेद एवं इतिहास पुराणादि सम्पूर्ण विद्याओं को मैंने पढ़ा है किन्तु (सोऽहं भगवो मंत्रविदेवास्मि नात्मवित्) अर्थात् हे भगवन् । मैं समस्त वेदादि मंत्रों का एवं समस्त विद्याओं का जानता हुआभी आत्मतत्त्व का जानने वाला नहीं हूँ (अतः भगवन् मा शोकस्य पारं तारयतु) अर्थात हेभगवन् आप कृपा करके हमे अविद्या शोक सागर से पारकरें देवर्षि जीकी विनम्र प्रार्थना को सुन कर श्रीसनतकुमारजीने ब्रह्मदानसे, उन्हे तृप्तकियाथा यथा:—

तमसः पारं दर्शयतिभगवान सनत्कुमारः अ: ७ खंड ३-६-७-१२ और २६ इस प्रकार उपर्युक्त छान्दोग्योपनिषद् के अन्तर्गत परमरहस्य के अवलोकन से यह भलीभांति विदित होता है कि बिना आचार्य के ब्रह्मतत्वका रहस्य नहीं ज्ञात होसकता है चौपाई श्रीमानसके—

गुरु बिनु भवनिधि तरैन कोई जो विरंचि शंकरसम होई

(प्रश्न) किं ज्ञान, किं विज्ञानं, कः उचित संस्कार (उत्तर) प्रथमं यत् सांख्य शास्त्रेण जडचैतन्ययोर्विभागस्तज्ज्ञानं । किं

विभागः तत्कथ्यते प्रथमं पञ्च भूतानि पृथिव्यप्तेजो वाय्वा काशा इति पञ्च महाभूतानि तत एकैकस्मात् द्वे द्वे इन्द्रिये भवतः एव दशेन्द्रियाणि कर्णं नेत्र नासिका जिह्वा त्वचः इति पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि हस्तपाद पायु शिश्न मुखानीति पञ्चकर्मेन्द्रियाणि शब्द स्पर्श रूप रस गन्धेति पञ्चविषयाः सता दशेन्द्रियाणां देवताः दिग् सूर्य्या श्विन वरुणवायवः इति ज्ञानेन्द्रियाणां देवता इन्द्रा विष्णुयमः प्रजापतिरग्निः इति कर्मेन्द्रियाणां देवताः इति स्थूल शरीरम् पञ्चप्राणास्तन्मात्रा मनोबुद्धिदशेन्द्रियै स्सहि सूक्ष्म शरीरम्।

अविद्यावासनामयं कारण शरीरम्।

(प्रश्न) ज्ञानकिसका कहते हैं और विज्ञान किसको कहते हैं। और उचित संस्कार किसका कहते हैं (उत्तर) प्रथम ज्ञानका उत्तर है कि सांख्य शास्त्रके अनुसार जड और चैतन्य अर्थात् प्रकृति और पुरुष का जो विभागहै वही ज्ञान है। क्या विभाग है उसको कहते हैं प्रथम प्रकृति याने माया का विभागदिखाते है कि पृथिवी-जल-अग्नि-वायु आकश-यह पञ्च महाभूत है पांचो महा भूतों से दो दो इन्द्रियायें उत्पन्न हुई हैं अर्थात् एक एक तत्वसे दो दो इन्द्रयाये हुई इस तरह से दश इन्द्रियां उत्पन्न हुई हैं क्रमशः अर्थात् आकाशसे कर्ण और वक् वायुसे त्वचा और हस्त अग्निसे नेत्र और पाद जल सेजिह्वा और वायु पृथिवी से घ्राण और उपस्थ।

इस में पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं कर्ण नेत्र नासिका जिह्वा त्वच और पांच कर्मेन्द्रिय हैं हस्त पाद पायु शिश्न मुख और पञ्चज्ञानेन्द्रियों के पांच विषय हैं शब्द स्पर्श रूप रस गंध ।

अब दश इन्द्रियोंके दशदेवताओं का वर्णन क्रमशः जानना चाहिए अन्तरिक्ष सूर्य्य अश्वनीकुमार बरुण वायु क्रमसे ज्ञानेन्द्रियों के देवता हैं और इन्द्र श्रीविष्णु यमराज प्रजापति अग्नि ये क्रमसे कर्मेन्द्रियों के देवता हैं इतने तत्वोंके स्थूल शरीर कहा जाता है और पंचप्रमाण, पञ्च तन्मात्रायें, मनबुद्धि और दस इन्द्रियों, एतत्समुदाय सूक्ष्म शरीर है एवं अविद्या वासनामय कारण शरीर है ।

एतैस्त्रिभिः शरीरै र्विलक्षणो न ह्रस्वो न दीर्घो नस्थूलो न सूक्ष्मो न श्यामो न गौरो न स्त्री नपुरुषो न क्लीवः। एवं प्रकारेण अलक्ष्यस्स्वयं प्रकाशः सच्चिदानंद रूप आत्मा स्वबुद्ध्या धार्य्यः मनसा विचारणीयः विचारानंतरमभ्यस्य चित्तन निरन्तरं चिन्तनीयः अहंकारेणाहमात्मा इति दृढ़ावेशः।

प्रश्नः—अन्तः करणचतुष्टयमपि जडभूतं भवति,

उत्तरं—तत्सत्यं परन्त्वत्राऽऽरूढशाखा न्यायेन घट्यते यथा कस्यापि वृक्षस्य संपूर्णाः शाखाश्छेदनीयास्तदात-

स्य वृक्षस्यैकां शाखामारुह्यान्यशाखाश्छिनत्ति तथा जि-ज्ञासुरप्यन्तःकरणचतुष्टये ज्ञानधारणंकृत्वात्माभ्यासं करोति तदनन्तरंसिद्धदशायां तदपि लीयते। तदा न ज्ञानमस्ति न ज्ञानी नचाहमात्माप्येवमनिर्वचनीयम् विभागोनात्रगम्यते तदा त्वमेतावद्दशायां श्रीसीताराम तत्वधारणाधिकारी भवसीति !

अर्थ-इनतीनों स्थूलसूक्ष्म कारण शरीरों से बिलक्षण न छोटा न बड़ा न मोटा न पतला न श्याम न गौर न स्त्री न पुरुष न नपुंसक, इस प्रकार से अलक्ष्य स्वयं प्रकाश सच्चिदानन्द रूप जो जीवात्मा है वह बुद्धि से धारण करने योग्य है मनसे विचार करने योग्य है विचार करने के बाद चित्तसे निरन्तर अभ्यास पूर्वक चिन्तवन करने योग्य है अर्थात् अन्तः करण द्वारा आत्मा का चिन्तवन होता है और अहंकार से हम आत्मा हैं ऐसा दृढ़ निश्चय करे इसका तात्पर्य यह है कि अहंकार दो प्रकार का होता है एक प्राकृत और एक दिव्य। प्राकृत अहंकार के वश जीवात्मा मायिक वस्तुओं को अपना समझता है और अप्राकृत दिव्य अहंकार के उदय होने पर श्री युगल सरकार में अहं बुद्धि हो जाती है अर्थात् उन्हीं को अपना सर्वस्व समझता है। तो यही दिव्य विचार है।

प्रश्न—अन्तःकरण मन बुद्धि चित्त अहंकार यह भी तो जड़ है। उत्तर-यह बात सत्य है परंच यहां आरूढ शाखा न्याय से काम चलता है। जैसे किसी वृक्ष की सम्पूर्ण शाखा छेदनी हैं

तो उस वृक्षके एक शाखा पर खड़ा होकर बाकी शाखा काटी जाती हैं उसी तरह से जिज्ञासु भी अन्तःकरण चतुष्टय में पूर्वोक्त ज्ञान को धारण कर आत्मा के जानने का अभ्यास करता है उसके बाद साधन करते २ जब सिद्धावस्था में पहुँचता है तब मायिक अन्तःकरण विलीन हो जाता है। उस समय प्रेमानन्द में मग्न हो जाता है, मग्न होजाने पर ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय, ध्यान ध्याता ध्येय यह सब त्रिपुटी रहते हुए भी उसका पृथक् २ विभाग नहीं रहता है। ध्येयाकार वृत्ति रहने पर सब एक २ में संलग्न हो जाते हैं जैसे किसी डाक्टर के शीशी सुंघाने पर शीशी के नशा में मग्न हो जाने पर आत्मा मन इन्द्रिय शरीर सबके रहते हुए भी उसकी कोई पृथक् २ सत्ता नहीं दिखाई पड़ती है क्योंकि वह नशा में निमग्न है वैसे ही यहां प्रेमानन्द में निमग्न है उसी समय का यह बचन है न ज्ञान है न ज्ञानी है न अहं आत्मा इसने अनिर्वचनीय है। सजातीय विशेषण रहित को अनिर्वचनीय कहते हैं अर्थात् इस प्रेमानन्द की तुलना और किसी से नहीं की जासकती है।

अन्तःकरण का बिलीन होना क्या है अर्थात् दिव्य अन्तःकरण का उदय होना और मायिक अन्तःकरण का लीन होजाना जैसे सूर्य के उदय होने पर रात्री लीन हो जाती है इसी विषय को श्रीगीताजी में स्वयं भगवान प्रतिपादन करते हैं।

तषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

अर्थ — जो पुरुष भक्ति से सदा मेरी उपासना करते हैं उनको मैं उस सात्विक तथा स्वच्छ बुद्धि देता हूं जिससे वे मुझे प्राप्त होते हैं, अर्थात् और भी दृढ़तर मेरी उपासना करने लगते हैं श्रीधरी टीका बुद्धियागं बुद्धिरूपं योगमुपायं श्रीरामानुजभाष्ये बुद्धियोगं विपाक दशा पन्नं सर्व सम्मति से यही अर्थ निश्चय हुआ कि प्राकृत बुद्धि को दिव्य बना देना । और भी देखिये गीता अ: ११ श्लो० ८

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।

अर्थ—हे अर्जुन तूं मेरे इस दिव्यरूप को अपने इस लौकिक नेत्र से देख नहीं सकता इसलिये मैं तुझ को दिव्य नेत्र देता हूँ तो क्या उनको नेत्र की जगह पर दूसरा नेत्र लगा दिये नहीं नहीं उसी नेत्र को अलौकिक दिव्य बना दिये और लौकिक प्राकृतपने को विलीन कर दिये ।

इसी तरह से दिव्य अन्तः करण का उदय होना और प्राकृत अन्तःकरण का विलीन होना जानना चाहिये।

ऐसी दशा प्राप्त होने पर जीवात्मा श्रीयुगल सरकार श्रीसीता रामजी के तत्व धारण करने में अधिकारी होता है।

प्रश्नः- नन्वन्तः करणानां लयेसति निदिध्यासादि बुद्ध्या दि कार्य्यंकथं सम्भवति। उत्तर मितिशंका न सम्भवति! कु-तोयत आत्मैव बुद्ध्यादीनां प्रकाशकः यथा राजा कार्य्यं का रिभिर्यत्कर्तव्यं-तत्कर्तुं किं स्वयं न समर्थो भवति - पुन र्यथा नक्षत्र शशि दीपिकानां प्रकाशः सूर्य्ये पर्य्यवश्यति तद्गौण स्तुतिभिः कार्य्यं सिद्ध्य त तस्य मुख्येन का शंकास्यात् अ तः- श्री सीताराम स्वरूपानुभवे प्राकृत बुद्ध्यादि व्यतिरिक्त केवलात्मनोधिकारः। तस्माच्छुद्ध ज्ञानेनान्तः करण चतुष्ट - यादि सर्वप्रकृतिकार्य्यलीनत्वेसति पश्चाच्छुद्धात्मा शेष भूतस्तदाधिकारो भवति । (प्रश्न) एतद्दशाप्राप्ते क परीक्षा स्यात्-उत्तरं-स्व-पर स्वरूपानुभवः यावद्व्यवहारा कार्य्यं प्राकृतम् तस्मात्परम् वैराग्यं प्रेमा परादि भक्तेरुदयः निरन्तरं तल्लग्न चित्तवृत्तिः शील सन्तोष दया मैत्र्यादि दिव्यगुणानामुदयः शुद्ध ज्ञानं ज्ञेयम् ॥

प्रश्न—जब अन्तः करण का लय होजायेगा तब बुद्धि आदि के द्वारा जो निरन्तर स्मरण होता है वह अब कैसे होगा

उत्तर—यह शंका करने योग्य नहीं है क्योंकि जब आत्माही बुद्धि आदि का प्रकाशक है तबस्मरण में क्या शंका है! जैसे राजा जिस कार्य्य को अपने कर्मचारियों के द्वारा कराता है तो

क्या उस कार्य्य को वह स्वयं नहीं कर सकता है ? अर्थात् कर सकता है जैसे नक्षत्र चन्द्रमा दीपिकोंका जो प्रकाशक है उन सबों का पर्य्यवसान सूर्य्य में ही होता है।

जब गौण दीपादि वस्तुओं से प्रकाश का काम चल जाता है तो सूर्य्य से चलने में क्या शंका है इसलिये श्रीसीतारामजीके स्वरूप के अनुभव में प्राकृत बुद्धि आदि से भिन्न जो केवल आत्मा है उसीका अधिकार है उस कारण से जब शुद्ध ज्ञानद्वारा सब प्राकृत कार्य्य अन्तः करण चतुष्टय लीन होजाने पर पश्चात् शुद्ध आत्मा जो शेषभूत है उसीका निरन्तर स्मरण में अधिकार होता है इस विषयका स्पष्टी करण पूर्व में हो चुका है जब मायिक सम्बन्ध भजन करते २ छूटजाता है तब यह शुद्धा दशा होता है उसके अनन्तर शुद्ध अन्तः करणादि का भी उदय होता है

(प्रश्न) इस दशाको प्राप्त होने का लक्षण क्या है अर्थात् उसकी क्या पहिचान है ?

(उत्तर) स्व स्वरूप और पर स्वरूपका अनुभव होना और मायिक यावत व्यवहार है उससे परम वैराग्य होना प्रेमादि परा भक्ति का उदय होना।

श्रीयुगल सरकार के श्रीचरणारविन्द में निरन्तर चित्त की वृत्ति लगीरहे, शील संतोष दया मैत्री आदि दिव्य गुणों का उदय हो, इसका शुद्ध विज्ञान जानना चाहिये ज्ञान और विज्ञान इन

दो प्रश्नों का उत्तर होचुका अब उचित संस्कार का उत्तर—

उचित संस्कारस्तु— उपदेष्टारो महात्मानः श्रीसीताराम नुरक्तानन्यचेतसः सर्वानुभवयुक्तास्तेषां हस्तेन सविनयमात्म समर्पणं कृत्वा पञ्चसंस्कारा धार्य्याः।

प्रश्नः— के पञ्चसंस्काराः ?

उत्तरं— तत्राह प्रथमं श्रीरामक्षेत्र मृदा उर्ध्व पुण्ड्रमर्धेन्दु श्रियायुक्तम् , कण्ठलग्नतुलसीमालिकायुग्मं , तप्तौ धनुर्बाणौ , बामबाहुमूले धनुर्दक्षिणे शरयुग्मं , दक्षिणप्रकोष्ठे मुद्रिकां तथा चन्द्रिकां , नाममुद्रापि भालदेशे धार्य्या श्री युगल षडक्षरमंत्रः तत्सम्बन्धिस्त्रनाम इति पञ्चसंस्काराः।

पुनरन्तःसंस्काराः— श्रद्धा विश्वास निष्ठा रुच्यादयः एवं द्विविध संस्कारानन्तरं भावनासम्बन्धोपदेशमाचार्य्यः कुर्य्यादिति सम्प्रदायः॥

अर्थ—उचित संस्कार तो श्रीयुगलसरकार के परमअनुरागी परम अनन्य सब प्रकार के अनुभवों से युक्त जो उपदेश देने वाले महात्मा हैं उन महात्मावों के द्वारा आत्म समर्पण करके उनके करकमलों से पञ्च संस्कार धारण करे।

आत्मसमर्पणमात्मा समर्प्य तेऽस्मिन् ब्रह्मणि तत्

आत्मसमर्पणम स्नौहविप्रक्षिप्तमिव ।

जीवात्माको ब्रह्म में समर्पण करने का नाम है आत्म समर्पण जैसे अग्नि में (हवि कर से दिया जाता है) यह आचार्य्य के द्वारा होता है यह दृष्टांत हुआ अब दार्ष्टान्त सुनिये हवि है जीव कर हैं आचार्य्य, अग्नि रूप हैं श्रीयुगलसरकार, भाव यह है कि हवि अग्नि में डार देने पर हवि को कुछ करना नहीं पड़ता है अग्नि स्वयं उसका परिपाक कर देता है इसी तरह आचार्य्य के द्वारा जीवात्मा का जब श्रीयुगलसरकार के श्रीचरणों में समर्पण हो जाता है तब स्वयं श्रीयुगल सरकार सुधार लेते हैं इसीको श्रीगोस्वामीजी लिखे हैं विनय पत्रिका में "मेरी न बने बनाये मेरे कोटि कल्प लों रामरावरे बनाये बने पल पाव में ।

(प्रश्न) पंच संस्कार कौन २ हैं ?

(उत्तर) कहते हैं सुनों प्रथम श्रीरामजी के क्षेत्रकी मृत्तिका से ऊर्द्ध्व पुण्ड्र करे फिर अर्द्ध चन्द्र बिन्दु युक्त श्रीकरे कंठमें दो लरी को श्रीतुलसीजी की कंठी धारण करे तप्त धनुषबाणले अर्थात् वामबाहु के मूल में धनुष और दक्षिण बाहुं मूल में दो बाण और दक्षिण प्रकोष्ठमें मुद्रिका और ललाट में चन्द्रिका धारण करे और श्रीस्वामिनी जी के षडक्षर मंत्र और सरकार के षड़क्षर मंत्र ग्रहण करे । तथा श्री युगल सरकार सम्बन्धि नाम यह पंच संस्कार है यह प्रथम आचार्य्य के द्वारा होता है यह बाह्य संस्कार है । श्रीसीताराम जी के अनन्योपासक रामाश्री

मन्दीय वैष्णववर्ग को पंच संस्कार विधि श्रीसनत्कुमारसंहिता के छठें अध्याय में श्रीवेदव्यास जी श्रीयुधिष्ठिर जी से इस प्रकार बतलाये हैं

श्लोक – शुद्धाग्नावाहुति दत्वा राम मन्त्रैश्च वेदवित् । मुद्रांच शर चापस्य शुद्ध धातु मयींततः ॥३८॥ वन्हौतप्त्वाथ शिष्यस्य दद्याद्वै भुजयो गुरूः । चिन्हमेकंतु चापस्य वामेच दक्षिणे तथा ॥३९॥ शर चिन्ह द्वयं कृत्वा रामनामान्वि तं वरम् । ऊर्ध्व पुंड्र ततो दद्याल्ललाटे स्वच्छ मृण्मयं ॥४०॥ सिंहासनोपरि श्रेष्ठं द्विरेखं चरणा कृतिं– स्थापयेज्जानकीरूपां श्रियं मध्ये हरिद्रजां ॥४१॥ शिष्यं श्रीराम सम्बन्धि नाम्नातु प्रवदेत्पुनः । श्री राम तारक मंत्रं श्रवणे श्रावयेद्गुरूः ॥४२॥ तुलसी मालिका सूक्ष्मां कंठलग्नां द्विधा कृतिम् दद्याचां क्षणमात्रंहि शिष्यो नैवत्यजेत् कचित् ॥ ४३ ॥ एवं सम्प्राप्त संस्कारः शिष्यः संपूजयेद्गुरुम् कृत्वाप्रदक्षिणंप्रेम्ना प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ४४

शुद्धान्तःकरण मोक्षाधिकारी आचार्य के पास जाकर तत्व जिज्ञासा करते हुए प्रार्थना करे तब श्री आचार्य विधिवत् अग्निस्थापन कर श्री राम मंत्रों से आहुति देवैं उस अग्नि में शुद्धधातु मयी मुद्रा याने धनुष बाणादि को तप्त कर शिष्य को देवैं बायें भुजा में धनुष का एक चिन्ह और दक्षिण भुजा में बाण

के दो चिन्ह देवैं फिर श्रीरामजी के क्षेत्र की मृत्तिका से ललाट में ऊर्द्ध्व पुंड्र करैं उसके मध्य में श्री जनकनन्दिनी रूपा श्री करैं वही हरिद्रा की होवें पुनः शिष्य को 'श्री' सीताराम' नाम, से युक्त शरणान्त या दासान्त नाम रखैं फिर श्री तुलसी जी की दोलर की कंठी 'कंठलग्ना धारण करावें । और शिष्य क्षणमात्र भी उस कंठी का परित्याग न करे फिर श्री युगल सरकार के षडक्षर मंत्र को दक्षिण कर्ण में सुनावें इस प्रकार जब शिष्य आचार्य्यं द्वारा पंच संस्कार प्राप्त हो जावे तब विधि पूर्वक यथा शक्ति आचार्य्य का पूजन करे इस प्रकार श्री वेदव्यास जी श्रीयुधिष्ठिर जी से कहें हैं

❀ ऊर्द्ध्व पुंड तिलक करने की विधि ❀

शुक्लयजुर्वेद वाजसनेय मीनोक्त सतपथ ब्राह्मणे ६ अनु०

ॐ उर्द्ध्वपूण्ड मालिषेत्तस्माद्विरेखा भवति पुनरागमनं नयाति ब्रह्मणः सायुज्यं सालोकतां जयति य एवं वेद ।

अर्थात् वेदाज्ञा है कि दो रेखा युक्त ऊर्द्ध्वपूंड को अवश्य धारण करे क्योंकि आलिखेत यह विधि वाक्य है इसको धारण करने से पुनर्जन्म नहीं होता और परब्रह्म श्रीयुगलसरकार की प्राप्ति हो जाती है ।

श्रीतुलसीजी की कंठी का कभी किसी समय त्याग न करे यह स्वयं भगवद् आज्ञा है, स्कन्द पुराणे 'वैष्णव खंडस्य पंचम खंडे तृतीय अध्याये —

तुलसीकाष्ठ संभूतां मालां यो वहते नरः । अप्यशौचस्त्व नाचारी मामेवैति न संशयः ॥ १ ॥ यज्ञोपवीतवद्धार्य्या

सदातुलसीमालिका ॥ न दोषं धारणे तस्य यतः सा ब्रह्मरूपिणी तुलसी मालिकाधारी पुनाति भुवन त्रय प्रणमन्ति सुरास्तस्मै शिव शक्र यमादयः ॥

यह साक्षात भगवान की आज्ञा है, भगवद्वचन का प्रमाण सब से श्रेष्ट माना जाता है।

अब अभ्यन्तर संस्कार सुनो।

श्रद्धा- श्रद्धातीति श्रद्धा सत वस्तु का धारण करने के नाम श्रद्धा है फिर विश्वास- कौनौ सिद्धि कि बिनु विश्वासा - फिरि निष्ठा फिर रूचि इत्यादि अर्थात् श्रद्धा रती भक्ता प्रपत्ति रहस्य इत्यादि यह सब आचार्य्य के द्वारा होते हैं इस तरह से बाह्य आभ्यन्तर दोनों संस्कारों के बाद भावना का जो सम्बन्ध है उस सम्बन्ध का उपदेश आचार्य्य करते हैं यह सम्प्रदायका सिद्धान्त है ।

भावना सम्बन्ध का विवरण प्रश्नोत्तर रूपमें—

भावना तीन शरीर से परे जो जीवात्मा है वह करता है और उसी जीवात्मा का परमात्मा के साथ जो सम्बन्ध है उसीको भावना सम्बन्ध कहते हैं आत्मसम्बन्ध का अर्थ प्रारम्भ में हो चुका है।

प्रश्न—जीवात्मा परमात्मा का सम्बन्ध अनादि है या सादि प्रमाण के साथ कहिये।

उत्तर—अनादि है प्रमाण श्रुति स्मृति श्रीपूर्वाचार्य्यों का श्रीमुख वचन है।

प्रमाण श्रुति—ऋग्वेदे वाजसनेयि संहितायां ३२ अ०

१० मन्त्र । सविधाता

सनो बन्धुर्जनिता धामानि वेद भुवनानि विश्वा यत्र देवा अमृत मानसानास्तृतीये धामन्यध्यैरयंत ।

अर्थात् वह श्रीरामजी हम सबों के बन्धु हैं नामसम्बन्धि हैं, वह सम्बन्ध अनेक तरह का है पितृ पुत्र भाव, पति पत्नी भाव सेवक सेव्य भाव, इससे स्पष्ट है कि सखीसखा वात्सल्य इत्यादि भाव श्रुति सिद्ध है इसी प्रमाण से आचार्य्य लोग सम्बन्ध पत्र देते हैं इसमें कोई अबद्ध नहीं है । जनिता-हम सबों के पिता हैं सविधाता-वही हम सबों के विधाता हैं । भाव-सब सुख के विधान करने वाले हैं । इसी विधाता पद से पति पत्नी भाव सिद्ध होता है । क्योंकि सर्व सुख विधाता सिवाय पति के और कोई नहीं । यथा—श्रीमद्वाल्मीकीये अयोध्याकाण्डे श्रीजानकीवाक्यं अनसूयां प्रति ।

अमितस्यच दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ।

असंख्य सुखदाता पतिकी कौन स्त्री नहीं पूजा करैगी इसीसे इस श्रुति में विधाता का अर्थ पति है । पतिपत्नी भाव से अतिशय सुख शृङ्गाररस में है जो सर्वोत्तम है । इसी कारण उत्तमाचार्य्य शृङ्गाररस की उपासना करते हैं । धामानि वेद भुवनानि विश्वा वह रसिकशिरोमणि श्रीरामजी श्रीमिथिला श्रीअयोध्या आदि के ज्ञाता हैं । इससे शृङ्गाररस भूमिसूचित होती है और सखी आदिक उनके उद्दीपक विभाव सूचित है । यत्र देवा अमृत मानसाना स्तृतीये ध्यैरयंत । जिन धामों में देव

भाव प्राप्त हुये परिकर लोग अमृत को प्राप्त होकर जिस तृतीय धाम में विहार करते हैं इस श्रुति से स्पष्ट है कि जीव श्रीसीता-रामजी के सम्बन्ध बिना तृतीय धाम में विहार नहीं कर सकता है इस श्रुति प्रमाण से यह सिद्ध हुआ कि जीवात्मा परमात्मा का सम्बन्ध अनादि है परंच जीवात्मा अविद्या के कारण इस संबंध को भूल गया है श्रीआचार्य्यदेव कृपा करके भूले हुए सम्बन्ध को यथार्थ ज्ञान करा देते हैं बस इसीका नाम सम्बन्ध ज्ञान है और सम्बन्धपत्र है और इसी ज्ञान को पूर्ण शरणागति कहते हैं। सम्बन्ध के विषय में स्मृति प्रमाण श्रीगीता अ० ४ श्लो० ११—ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। हे अर्जुन जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं अर्थात् जिस भाव से भजते हैं मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ अर्थात् उसी भावभावनाके अनुसार प्राप्त होता हूँ। प्रमाण दूसरा गीता अ० ८ श्लो० ६।

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः॥

अर्थात् हे अर्जुन यह मनुष्य अन्तकाल में जिस जिस भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है वह उसको ही प्राप्त होता है क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है अर्थात उसी भाव में ओत प्रोत निमग्न रहा है। इस श्रीगीताजी के वचन से भी यही निश्चय भया कि भावानुसार ही प्राप्ति होती है। इसीसे श्रीगोस्वामीजी लिखें हैं कि 'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥' भाव रस सम्बन्ध

अनुराग कार्य्य कारण भाव से एक ही वस्तु है जैसे भूसत्तायां भूचिंतायां इन दोनों धातुओं से भाव बनता है। तद्वत सत्त यह भूसतायां का अर्थ भया। भावयामि नाम हृदये निरन्तरं चितयामि यह भूचिंतायां हृदय में निरन्तर चिंतवन करने का नाम भाव है तो चितवन के अनुसार रस नाम आसक्ति प्रीति होगी और आसक्ति प्रीति के अनुसार सम्बन्ध होगा और सम्बन्ध के अनुसार ही अनुराग याने प्रेम होगा बिना सम्बन्ध के त्रिकाल में न किसीसे प्रेम भया है न है न होगा यह निर्विवाद प्रत्यक्ष बात है भावानुगामी रसः, रसानुगामी सम्बन्धः, सम्बन्धानुगामी अनुरागः, प्रेम यह प्रत्यक्ष बात है कि बिना सम्बन्ध के कोई बात नहीं पूछता है। अब सम्बन्ध के विषय में अनन्त श्रीजगद्गुरु श्रीरामानन्दस्वामीजी का वचन श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर में मंत्रार्थ के ऊपर।

पिता पुत्रत्व सम्बन्धो जगत्कारण वाचिना।
रक्ष्य रक्षक भावश्च रेण रक्षक वाचिना ॥

अर्थात् ब्रह्मा आदि जगत के निमित्त, उपादान और सहकारि कारणवाची र से पिता पुत्र सम्बन्ध तथा रक्षक वाची र से रक्ष्य रक्षक सम्बन्ध कहा जाता है।

शेष शेषित्व सम्बन्ध श्चतुर्थ्या लुप्तयोच्यते।
भार्या भर्तृत्व सम्बन्धोऽप्यनन्यार्हत्व वाचिना॥
अकारेणापि विज्ञेयो मध्यस्थेन महामते ।

अर्थात् र के आगे जिस चतुर्थी विभक्ति का लोप हुआ है उस लुप्त चतुर्थी विभक्ति के द्वारा शेष शेशित्व सम्बन्ध और अनन्यार्ह वाची मध्यगत अकार से भार्या भर्तृत्व सम्बन्ध अभि विज्ञेयः अर्थात् निश्चय करके विशेष रूप से जानने योग्य है यह विचारणीय विषय है भार्या भर्तृत्व सम्बन्ध में श्रीपरमाचार्य्य विज्ञेय पद दिये हैं।

स्व स्वामिभावसम्बन्धो मकारेणाथ कथ्यते ॥

तथा ज्ञानार्थक मन धातु से बने हुये म शब्द के द्वारा स्व और स्वामि भाव सम्बन्ध कहा जाता है तात्पर्य्य यह है कि स्व जीव और स्वामि ईश्वर इन दोनों का परस्पर स्व-स्वामि भाव का बोधन मकार पद से होता है।

आधाराधेय भावोऽपि ज्ञेयो रामपदेन तु।
सेव्यसेवकभावस्तु चतुर्थ्या विनिगद्यते। ७।

अर्थात् रामपद से

यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति। यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये।

इत्यादि श्रुति स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित आधाराधेय भाव सम्बन्ध जीव और ईश्वर का जानना चाहिये। राम् के आगे "आय" यह चतुर्थी विभक्ति है इससे सेव्य सेवक संबंध कहा जाता है।

नमः पदेनाखंडेन स्वात्मात्मीयत्वमुच्यते ।
षष्ठ्यन्तेन मकारेण भोग्यभोक्तृत्वमप्युत ।८।

अर्थात् नमः शब्द दो प्रकार का है, एक अखंड और दूसरा सखंड अखंड नमः शब्द से आत्मा और आत्मीय भाव कहा जाता है। तथा अखंड पक्ष में न के आगे मः यह षष्ठ्यन्त पद है और उससे भोग्य भोक्तृत्व भाव सम्बन्ध कहा जाता है ।।८।। और श्रीरामानुजाचार्य्यजी के सर्व प्रथमाचार्य्य श्रीशठकोपस्वामीजी की श्रीसहस्रगीती के कुछ वचन दिग्दर्शन कराये जाते हैं। श्रीस्वामी जी अपने को राजकुमारी मानते थे। प्रत्यक्ष में तो आपका पुरुष का आकार था परंच भावना सम्बन्ध का कल्याणार्थ आप स्वयं अपने वचन द्वारा कहे हैं यथा—सहस्रगीति पंचम शतक पंचम दशक श्लोक ।।१०।।

सेयं काम वशेति मान्तु जननी, तद्दर्शनाद्वारयत्येवं, हन्त कुरंग दिव्य नगरी, नाथं हि दृष्ट्वा ऽस्म्यहम् । देवैस्सूरि वरैश्च, सेव्य मतुलं, तेजो मयं तद्वपुः, चित्तेमे सततं च-कास्ति तदिदं, वेद्यं हि नान्यै रहो ।।१०।।

अर्थ—हा ! यह तो जवानी की दिवानी काम के बश में होकर न जाने क्या २ अनर्थ कर डालेगी ऐसा कहकर मेरी माता मुझे उस प्रभू की दर्शनों से रोकती है किन्तु सम्पूर्ण देवगण और नित्यसूरी वृन्द जिसकी सेवा करते हैं जो सर्वश्रे तेजोमय

विग्रह वाला है कुरंग नगरी के उस दिव्य स्वामी को देखकर ही मैं कामातुर और पागल हुई हूँ। उस प्रभु की अति शोभायमान मूर्ती मेरे चित्तचत्वर में निरन्तर चमकती रहती है। इस आनन्द को पाने का सौभाग्य मुझे छोड़कर संसार में क्या किसी अन्य को मिल सकता है ? ॥ १० ॥ क्या किसी अन्य को मिल सकता है इसका तात्पर्य यह है कि जो शृङ्गाररसके अनन्योपासक नहीं हैं उनको यह सुख महादुर्लभ है और इसके न मिलने के कारण वे कुछ मनमानी बातें कहा करते हैं जब लोमड़ी को अंगूर नहीं मिला तो उसने कहा कि अंगूर खट्टा है। और भी सहस्र गीति के वचन सुनिये

मम पूर्ण प्राणः काकुस्थः स्निग्धः श्यामलोरूपवान संश्लेषं कृत्वा विश्लिष्टोजानः। ९ शतक ३ दशक पा० ७

अर्थ—हमारे पूर्ण प्राण काकुस्थ श्रीरामभद्रजू अत्यन्त चिक्कण श्यामल स्वरूप वाले हमारे अंगों को आलिंगन करके अब हमसे पृथक् होगये हैं। कथंजीवामि उनके बिना हमारा जीवन कैसे रहेगा ? यह विरहावस्था में हैं।

दशरथस्य सुतं विना अन्य शरणवान्नास्मि।

अर्थ—श्रीदशरथकुमार श्रीरामभद्रजी के बिना हमको दूसरा कोई शरण देनेवाला नहीं है।

दीर्घारात्रीश्च कल्परूपा दहत कठिन चापो मत्काकुस्थो नायाति ५-४-३।

अर्थ—हाय काम से पीड़िता हूँ हमको यह अत्यन्त कल्प के समान बड़ी रात्री जला रही है। कठिन चाप धारण करनेवाले हमारे प्राणप्रीतम श्रीरामभद्रजी नहीं आए।

४।२।१० पर श्रीवरवरस्वामीजी का वचन—

स्त्रीभावनां समधिगम्य मुनिर्मुमोह।

अर्थात् स्त्रीत्वभाव को प्राप्त होकर मुनिजी विरहावस्था में हैं।

रसराजशृङ्गाररस की श्रेष्ठता।

यद्यपि मधुसूदनसरस्वतीजो अद्वैतपथ के पथिक थे और उस पथ के अनेकां ग्रंथ बनाये परंच अन्तमें उनके ऊपर श्रीभगवत् कृपा कटाक्ष भई फिर वे श्रीभगवत भक्ति रसायन ग्रंथ बनाए और पंचरसा भक्ति का प्रतिपादन किए और सब रसों में श्रीशृङ्गाररस को श्रेष्ठ माने।

शृङ्गारोमिश्रितत्वेऽपि सर्वेभ्मोवलवत्तरः।
तीव्रतीव्रतरत्वंतु रते स्तत्रैव वीक्ष्यते॥३॥

अर्थात् शृंगाररस मिश्रतत्व है क्योंकि सब रस इसके अन्दर आजाते हैं प्रमाण यदा यदाहि कोशल्या इस श्लोक का वर्णन पूर्व

में हो चुका है परंच मिश्रतत्व होने पर भी सब रसों से बलवत्तर है अर्थात् महान् बलवान है। क्योंकि तीव्रातितीव्रतर, तीव्रतम, रति, आशक्ति, प्रेम, आनन्द इसमें है। तथा देखा जाता है इतने और रसों में नहीं हैं एतावता बलवत्तम है। और आपने भावना त्यहमें प्रदिव्य मंगल विग्रह की प्राप्ति बतलाई है।

भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेवहि।
मनोगतस्तदाकाररसता मेति पुष्कलम् ॥१०॥

भावना में परमानन्द स्वरूप निश्चय स्वयं भगवान आकार युक्त मनागत अर्थात् अन्तःकरण में प्रकट होजाते हैं और अत्यंत आनन्दयुक्त स्थायीभाव को प्राप्त हो जाते हैं। तथा और भी शृङ्गाररस की श्रेष्ठता श्रीमद्भागवत में देखिये। श्रीउद्धवजी कितने बड़े महान् ज्ञानी और भक्त थे सो उन्होंने श्रीभगवान् से प्रार्थना की है कि हम श्रीवृन्दाबन में लता बनस्पति और औषधि इत्यादि होजाते तो बड़ा अच्छा होता कि इन गोपियों के श्रीचरणरज हमारे ऊपर अहर्निश पड़ा करती।

आसामहो चरणरेणु जुषा महंस्याम्।
बृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम् ॥

अर्थ— अहो ? क्या ही अच्छा होता यदि मैं बृन्दाबन में इन ब्रजबालाओं के चरणरज का सेवन करनेवाली लता औषधि झाड़ियों में से कोई होजाऊँ अर्थात् ऐसा होने में इनका श्रीचरण-रज हमारे ऊपर बराबर पड़ा करता।

अग्रे त्वं कथमद्य भासि च नृणामित्येव निन्दन्ति मां ते ऽप्येहंत सखीजनाश्च जननी वर्गा भवन्तोऽधुना । दृष्ट्वा रम्य कुरंगदिव्यनगरीनाथं हि धन्याऽस्मि मे चित्तं न त्यजतीक्षुदुग्धमधुरो भूषान्वितो मौलि भृत् ॥६॥

अर्थ—अये माध्य सखियां तथा पूज्य माताओ? तुम मेरे से यह कहती हो कि अरी तू सब मनुष्यों के आगे निर्लज्ज होकर पागल सी फिर ी हैं? तुझे लज्जा नहीं आती? ऐसा कहकर जो मेरी नि ्दा करती हो? वह सब व्यर्थ है क्योंकि मैं तो कुरंगनगर के दिव्य स्वामी का देखकर धन्यभाग्य हो गई हूँ दिव्य मुकुट और दिव्यभूषणों से शाभायमान उस प्रभु को मेरा मन छोड़ना नहीं चाहता। और वह प्रभु मुझे ईख और दूध से भी अधिक मधुर स्वादिष्ट प्रतीत हो रहे हैं ॥६॥ सहस्रगीति ५ सतक ५ दसक

श्रीसहस्रगीति के संस्कृत तिलक भगवत् विषयमें वेदान्ताचारी जी क. वेदान्त देशिक वार्ता—

पुंस्त्वं निशम्य पुरुषोत्तमता विशिष्टे ।
शौरेः शठारि यमिनोऽजनि कामिनीत्वम् ॥

अर्थात् पुरुषोत्तम भगवान् में ही वास्तविक पुंस्त्व है ऐसा सुनकर और जानकर यदि जो शठारि सूरि याने शठकोपस्वामी हैं स वद स्त्रीत्व भाव को प्राप्त हुए। है भी बात ऐसी ही यदि ऐसा नहीं होता तो दंडकारण्य के ऋषिगण आजन्म ब्रह्मचारी सदा-त्यागी तपस्वी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को देखकर स्त्रीत्वभाव को

कैसे प्राप्त होते जो कि श्रीवाल्मीकी में श्लोक आया है।

दृष्ट्वातु विस्मिताकाराः रामस्य वन वासिनः।

इसी बात को स्पष्ट किये हैं श्रीवेदव्यासजी श्रीपद्मपुराण में पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्य वासिनः। दृष्ट्वारामं हरिं तत्र भोक्तु मैच्छन् सुविग्रहम ॥ अर्थात् त्रेतायुग में दंडकारण्यवासी सब ऋषि वर्ग दुःख के हरण करनेवाले श्रीरामभद्रजू के सुन्दर विग्रह को देख करके उनके साथ स्त्रीत्व भाव से भोग की इच्छा किये।

श्रुति स्मृतियों के द्वारा यह सुनने में आता है कि प्रकृति पुरुष की भोग्या है तो क्या यह जीव भी प्रकृति है जो परमात्मा को भोक्ता बना कर स्वयं पत्नी भाव से भोग्य बनता है। हां प्रकृति दो प्रकार की होती है एक जड़ एक चेतन तो जीवमात्र चेतन प्रकृति है प्रमाण सर्वमान्य गीता श्लोक ४-५ भूमिरापो ऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा ॥ ४ ॥ अपरेय मितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत ॥ ५ ॥ अर्थ—पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि और अहंकार इस प्रकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी प्रकृति है यह आठ प्रकार के भेदों वाली तो अपरा अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो इससे दूसरी को जिससे कि यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है मेरी जीवरूपा परा अर्थात् चेतन प्रकृति जानो जीव प्रकृति है ऐसा निश्चय भया और भी देखिये मुक्तावस्था मे भी यह जीव स्त्रीत्वभाव से रहता है प्रमाण—पातंजलियोगसूत्रे—स्वरूपावा स्थितिर्वा चिच्छक्तेः।

अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित जो चैतन्य शक्ति जीव है उसी को कैवल्य कहते हैं अर्थात् मुक्त जीव कहते हैं।

शक्ति कहने ही से जीव का स्त्रीत्व स्पष्ट हुआ अभिप्राय मुक्तावस्था में सब जीव स्त्रीरूप होकर रहते हैं इसी कारण से मुक्तजीव को ५०० अप्सरा ही आकर श्रीविरजातट से जीव को शृंगार करके श्रीयुगलसरकार के पास लेजाती हैं यह ऋग्वेदीय कौषीतकी उपनिषद् में लिखा है और इसी कारण से संहिता ४ कांडे २सूक्ते ७ वाँ मन्त्र में लिखा है कि हिरण्यगर्भ श्रीरामजी जीवमात्र के पति हैं श्रीबाल्मीकी अयोध्याकांड में हिरण्यनाभ नाम सरकार का आया है। मंत्र—हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत् ॥ इति श्रुतिः

इसीसे लिखा है कि—तत एव स्वभावोयं प्रकृतेर्भाव ईश्वरः। अर्थात् इसी कारण से प्रकृति का यह स्वभाव ही है कि ईश्वर में स्त्री भाव से रहती है भाव सृष्टि मात्र स्त्री भाव से ईश्वर की सेवा करती है। और भी श्रीरामानुज सम्प्रदाय के प्रधान ग्रन्थ वार्तामाला तथा श्रीवचनभूषण के सम्बन्ध के विषय में कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है।

वार्तामाला १४ चौदहवींवार्ता—उपाय ज्ञानं, सम्बन्ध ज्ञानं तच्च सम्बन्धज्ञानं, सम्बन्धयाथात्म्यज्ञानं, सम्बन्धस्वरूपज्ञानं, सम्बन्धस्वरूप याथात्म्यज्ञानं, चेति चतुर्विधम्, भाव-भगवत् प्राप्ति का वास्तविक उपाय सम्बन्धज्ञान है विशेष विषय उस ग्रंथ में देखिए। चौदहवीं वार्ता का स्पष्टीकरण श्रीधनुर्दासोक्ता २२

बाइनवीं बार्ता में भया है श्रीरामानुज सम्प्रदाय के मूलमन्त्र पर पाणिग्रहणं, विवाहं, चतुर्थदिवससश्लेषं च प्रतिपादतीति धनुर्दासः २२ यह बात भी स्मरण रहना चाहिए वार्तामाला तथा श्रीवचन-भूषण पर श्रीविष्वक्सेनाचार्य कृत चूड़ामणि टीका में जैसा अर्थ लिखा है वैसा ही यहां लिखा गया है।

अर्थ—मूलमंत्र (पाणिग्रहणम) ब्रह्म तथा जीव के पाणिग्रहण रूप (विवाहम) भर्तृभार्या सम्बन्ध रूप विवाह का (च) और (चतुर्थ दिवस सश्लेषं) चौथे दिन भर्तृभार्या के संयोग को (प्रति-पादपति) कहता है (इति) ऐसा धनुर्दासजी कहे हैं। और इसीको १२० वी बार्ता में श्रीकृष्णपादजी भी कहे हैं।

अथ श्रीकृष्णपादोक्ता बार्ता १२० प्रथम पादे पाणिग्रहणं—मध्यमपादे सहोपवेशः तृतीय पदे चतुर्थी शय्या, मूलमन्त्र के पहले पद प्रणव में (पाणिग्रहणं) ब्रह्म और जीव का पाणिग्रहण विवाह कहा जाता है। तथा (मध्यमपादे) मूलमन्त्र के दूसरे नमः इस पद में (सह) ब्रह्म और जीव के साथ में (उपवेशः) उपवेश कहा जाता है मूलमन्त्र के चतुर्थी विभक्ति युक्त तीसरे पद में (तृतीय पदे चतुर्थी शय्या) ब्रह्म और जीव के चतुर्थी कर्म के रोज एक पलंग पर मिलकर शयन करना कहा जाता है यह सब विचारणीय विषय है कि सम्प्रदाय का सिद्धान्त क्या है और किस रस की उपासना की प्रधानता है।

श्रीवचनभूषण के ४ सूत्र सम्बन्ध विषय में सूत्र १२१ वां भगवद्विषय प्रवृति रुचितांकिमितिचेत् अर्थात् भगवान् के विषयमें

जो प्रवृति है वह कैसे उचित संगत हो सकती है ऐसा यदि प्रश्न हो तो १२४ वां सूत्र में, 'तस्याःमूलं प्राश्रयत्' उस भगवद्विषय प्रवृत्ति का मूल कारण अत्यन्त स्नेह है। सूत्र—तस्यमूलं सम्बन्ध और उस अत्यन्त प्रेम का मूलकारण जीवात्मा परमात्म का सम्बन्ध ज्ञान है। सूत्र १२६ में औपाधिकःनभवति सत्ताप्रयुक्तः अर्थात वह सम्बन्ध आगन्तुक नहीं है सत्ताप्रयुक्त है अर्थात् अनादि आत्मा से अनादि सम्बन्ध है। प्रपत्ति, शरणागति, न्यास आत्मसमर्पण आत्मनिवेदन, आत्मनिक्षेप यह पर्यायवाचक शब्द हैं और कायिकी, वाचिकी, मानसी यह तीन प्रकार की प्रपत्ति हैं परंच यथार्थ सम्बन्ध ज्ञान का नाम मानसी प्रपत्ति है। श्लोक भारद्वाज संहितायां—

स्वभाविकस्तु सम्बन्धः पुंसो यः परमात्मनः।
तस्यैव बोधो न्यासाख्यः प्रथमं यात्युपायताम्॥

अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध स्वाभाविक अर्थात् अनादि है परंच उसी सम्बन्ध के बोध का नाम न्यास अर्थात प्रपत्ति है और वही भगवत्प्राप्ति के प्रधान उपाय हैं।

प्रश्न—सम्बन्ध पत्र लिखकर क्यों दिया जाता है केवलवचन द्वारा उपदेश कर दिया जाता।

उत्तर—लिखने पर भी वचन द्वारा ही उपदेश होता है पचरं सौ बार कहना न एकबार का लिखना बराबर होता है क्ययां लिखने से बराबर अभ्यास बना रहता है वर्तमान समय में दि

श्रुते स्पृते तिद्वाप श्रीमानसरामायण इत्यादि यदि लिखे होते तो सब मनुष्य कारे कारे बहजाते विद्वानोंका दर्शन तक भी नहीं होता।

प्रश्न—शृंगाररस रसराज क्यों कहा जाता है।

उत्तर—शृङ्गं उच्चं रिच्छति गच्छति इति शृंगारः, शृङ्गशब्द उच्च पद का बाधक है उस उच्च पद पर जो प्राप्त है उसे शृङ्गार कहते हैं। अपने शब्दार्थ से ही निर्विवाद रसराज सिद्ध होगया और इसी शृङ्गार का पर्याय है रसराज, शुचि, उज्ज्वल और मधुर और रसराज होने का कारण यह है कि सब रस इसके आभ्यन्तर आजाते हैं और वास्तविक आत्मसमर्पण भी इसीमें होता है जैसे श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण श्रीअयोध्याकांड सर्ग ४२ श्लो० १२ श्री-चक्रवर्तीजी का वचन—

यदा यदाहि कौशल्या दासीवच्च सखीवच।
भार्यावद्भगिनीवच्च मातृवच्चोप तिष्ठति ॥

अर्थात श्रीकौशल्याजी जबजब जैसी आवश्यकता रखती रहीं तबतब तैसा वर्ताव बर्तती रहीं अर्थात् सेवामें दासी की तरह हास्य में सखी की तरह भार्या तो थी हीं और चक्रवर्तिजीके दूसरे विवाह करने में बहिन की तरह उत्साह करती रहीं और भोजन में माता के तरह,कहिए पति पत्नी भाव शृङ्गार के अन्दर सब रस आगया सासे रसराज कहाता है। और आत्मसमर्पण सुनिये श्रीमद्भागवत में भक्तिके नव प्रकार लिखे गए हैं। प्रकार उसीको कहते हैं कि एकसे दूसरा भिन्न हो।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोस्स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

ता दास्यं और सख्यं से भिन्न आत्मनिवेदन कहा गया इससे निर्विवाद सिद्ध हुआ कि वास्तविक आत्मसमर्पण श्रृङ्गार ही में होता है।

प्रश्न—रस शब्द और रसिक शब्द श्रौत, स्मार्त है या आधुनिक।

उत्तर—श्रुति स्मृति सम्मत है रस शब्द ब्रह्म श्रीरामजी का पर्य्याय है।

यजुर्वेदीय तैत्तरीयोपनिषदि सप्तम अनुवाके रसोवैस: अर्थात ब्रह्म श्रीरामजी रस हैं और श्रीमद्भागवत दशमस्कंध में देखिये।

पिवत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिकाः।

भुवि भावुका:,भावुका: रसिका:मुहु: रसमालयं भागवतंपिवत देखिये श्रीवेदव्यासजी लिखते हैं कि भावुक रसिक इस रस को पान करें अर्थात् रस के अधिकारी भावुक रसिक होते हैं और भी अनेकों जगह लिखा है परंच ग्रन्थ के बिस्तार के कारण नहीं लिखा गया है इससे रस और रसिक शब्द अनादि है और श्रुति स्मृति सम्मत है।

श्रीवचनभूषण में ५ सूत्र आये हैं श्रृङ्गाररस में पतिपत्नीजन्य सुख के ऊपर विचार २८९ से २९३ तक सूत्र २८८ स्वप्रयोजन

परा: सर्वे प्रतिकूला इतिकथमुच्यन्ते इतिचेत् । चेतन जीवात्मा का स्वप्रयोजन 'स्वसुख जितना है सब प्रतिकूल हैं अर्थात् त्याज्य हैं। यह कैसे कहा गया है क्योंकि जितने प्रधान पूर्वाचार्य्य श्रीशठकोपस्वामी इत्यादि तथा और भी दिव्य सूरियों में शृङ्गाररसजन्य रतसुख प्रधान होते हुए भी स्वसुख पाया गया है क्योंकि शृंगार रस में पतिपत्नी भाव प्रधान है और इसका स्थायीभाव रति है और बिना स्थायीभाव के कोई वस्तु ठहर नहीं सकती इतिचेत् ऐसा प्रश्न किये हो तो उत्तर सुनो दूसरे चार सूत्रमें उत्तर है मूल सूत्र २६० अत्र स्वप्रयोजनमित्याश्रयदोषजन्य मुच्यते। अर्थात स्व प्रयोजन स्वसुख दो प्रकार का होता है एक आश्रयजन्य एक दिव्य विषयजन्य। आश्रयजन्य स्वसुखत्याज्य है क्योंकि अविद्याजन्य है 'श्रीयुगलसरकार की सेवा निष्काम और अनन्यभाव से करना' चाहिए। अर्थ धर्म कामादि के लोभ से करना या देवतान्तर को अपना रक्षक मानना यह आश्रयजन्य दोष कहाता है और दिव्य विषयजन्य सुख तो अनुकूल है एतावता त्याज्य नहीं है। अब इसका पूर्ण उत्तर आगे तीन सूत्रों में देखिये। सूत्र २६१ अतो न दोषः यह सूत्र है। इसकी व्याख्या सुनिए—अस्मादिति अत: इस कारण से दिव्य सूरियों का दिव्यविषयजन्यसुख निर्दोष है अर्थात् दोष नहीं है। क्योंकि यह विषय प्राकृत नहीं है अप्राकृत दिव्य है और श्रीयुगलसरकार के कृपासाध्य हैं क्योंकि परमात्मा का नाम आत्मप्रद है यदि सरकार कृपा करके स्वयं उसको प्राप्त हो जांय और वह उस सुख को स्वीकार न करे तब तो कृपा का ही निरादर हुआ क्योंकि महानुभाव आचार्यों का यह परमसिद्धान्त

है कि तत्सुख प्रधान और स्वसुख तत्कृपोपलब्ध है इसलिए निर्दोष है क्योंकि श्रीस्वामिनीजी का पूर्णकृपाकटाक्ष फल है दाहा श्रीअग्रदेवाचार्यजी का—बिन संता शरणागति कर न गहत वर योग।

प्रश्न—श्रीयुगलसरकार का संयोग अखंड अबाध एकरस है और परिकरों के साथ संयोग होने पर तो श्रीस्वामिनीजी से असंयोग हो जाता होगा।

उत्तर—इति शंका न कर्तव्या। यह शंका नहीं करने योग्य है क्योंकि ब्रह्म श्रीरामजी की दिव्य मंगल विग्रहयुक्त सर्वत्र व्यापकता है क्योंकि महर्षि वाल्मीकजी बालकांड सर्ग ७७ में लिखते हैं कि-

रामश्च सीतया सार्धं विजहार बहून्तून्

फिर वह भी लिखते हैं कि—मातृभ्यो मातृकार्याणि। इत्यादि अर्थात् श्रीरामजी तो अनन्त ऋतु तक श्रीस्वामिनीजू के साथ विहार में रहे अर्थात् महल से बाहर नहीं आए और यह भी लिखते हैं कि माता पिता आचार्य ग्रामवासियों के कार्य भी पूर्णतया करते रहे इससे निर्विवाद सिद्ध हुआ कि सरकार दिव्यमंगल विग्रह से सर्वत्र व्यापक हैं। विष्णुपुराणे—

दिव्यमंगलविग्रह के विषय में श्लोक।

एकत्वेसति नानात्वन्नानात्वेसति चैकता।
आश्चर्यं ब्रह्मणोरूपं कस्तद्वेदितुमर्हति॥ १॥
नतस्यप्राकृतामूर्तिर्मांसमेदोऽस्थि सम्भवा।

हेयोपादेय रहिता नैव प्रकृतिजा क्वचित् ॥

पद्मपुराणे—

यो वेत्ति भौतिकं देहं रामस्य परमात्मनः।
मुखं तस्यावलोक्यापि स चैलं स्नानमाचरेद् ॥

श्रीमद्वाल्मीकि उत्तरकांड श्रीअगस्तजी का वचन।

ये च त्वां घोर चक्षुभि र्द्दर्यन्ति प्राणिनोभुवि—
हतास्ते ब्रह्मदंडेन सद्दयो निरय गामिनः ॥

अर्थात् हे रामभद्रजी जो आपको दुष्ट दृष्टि से देखता है अर्थात् पूर्णपरात्पर ब्रह्म नहीं मानता वह दंड से ताडित होकर शीघ्र नर्क में जाता है और यह भी लिखा है कि अयोध्यां च परित्यज्य पदमेकं न गच्छति। और रावणादि का बध करना भी लीखा है और मारीच दिव्यमंगलमय विग्रहको वृक्ष वृक्षमें देखता था और मानस चौपाई 'गण सह सबहि मिले भगवाना। उमा मर्म यह काहुन जाना॥ और सर्ग नर्क अपवर्ग समाना। जहं तहं देख धरे धनुबाना॥ और हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥ और श्रुति ऋग्वेद मं० ६ अ० ४ सू० ४७ नं० १८ में लिखा है कि 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' अर्थात् परमेश्वर अपने अनन्त सामर्थ्य से अनेक रूप वाला होता है। और अवतार के पहले श्रीमनुशतरूपाजी को श्रीयुगलसरकार अपने दिव्यमंगलविग्रह से दर्शन दिये रहे इत्यादि अनेकों प्रमाण हैं। जब सरकार अनन्त दिव्यमंगलविग्रहवाले एक ही काल में हो

जाते हैं तब इस शंका का स्थान ही कहां रहगया कि श्रीस्वामिनी-जी से असंयोग हो जायेगा और श्रीवाल्मीकी उत्तरकांड में तथ श्रीव्यासजी कृत श्रीकौशलखण्ड इत्यादि अनेकों ग्रन्थों में जहां महारास का प्रकरण है वहां ऐसा ही वर्णन है कि श्रीस्वामिनीजी के साथ रहते हुए अनंत परिकरों के साथ रास विहार कर रहे हैं और सोभरी ऋषी जीव कोटी में हैं जब उनमें इतनी सामर्थ्य रही कि सौ शरीर होगये और एक ही आत्मा को सबमें प्रवेश कर दिए और सब रानी यही समझती थीं कि हमारे पतिदेव हमारे ही साथ हैं तो परब्रह्म में क्या शंका है ?

एकबार श्रीनारदजी को भी ऐसी ही शंका हुई थी कि श्रीकृष्ण भगवान् अनेक पटरानी रानियों के साथ कैसे बर्तते हैं जब द्वारका जी गए तो सबके पलँग पर भगवान् को देखे तब शंका निवृत्त हो गई जब अवतार में यह बात है तो सर्वावतारी सरकार में क्या कहना है और अपने उपास्यदेव श्रीयुगलसरकार को व्यापय एक-देशी नहीं मानना चाहिये क्योंकि उपासना ऐश्वर्य्य माधुर्य्य मिली हुई चलती है। और यह सम्प्रदाय वैदिकसिद्धान्त सिद्ध है और श्रुति ब्रह्म के स्वरूप को इस प्रकार प्रतिपादन करती है (बृह० अ० ५ ब्रा० १) ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ भाव यह है कि पूर्णब्रह्ममें से पूर्ण लेलेने पर भी पूर्ण पूर्ण बने रहते हैं। अर्थात् अनेक रूप धारण करने पर भी सबमें पूर्णता बनी रहती है यही ब्रह्म में ब्रह्मत्व है अर्थात् ईश्वर का ऐश्वर्य्य है। सूत्र २९२ मूल विषय

दोषप्रयुक्तानि सर्वाणि दुस्त्यजं खलु ।

अर्थ—परमात्मा का विकट द्रावक ,पुरुषों को भी स्त्री बनाने वाला विग्रह सौन्दर्य्यरूप दोष से होनेवाली स्वप्रयोजन परता अर्थात् दिव्यभोगेच्छा सब प्रकार से खलु निश्चय करके दुस्त्यज है यह व्यंग स्तुति है अर्थात दिव्य मंगलमय विग्रह के दर्शन होने पर यदि उपासक चाहे कि हम सरकार के साथ अंगस्पर्शादि संभोग न करे तो भी निश्चय करके नहीं रुक सकता उस दिव्य मंगलमय विग्रहमें ही इतनी आकर्षणशक्ति है कि वह अपने तरफ खींच ही लेती है जैसे लोहे को चुम्बक तात्पर्य्य यह है कि प्रभु का साक्षात्कार दर्शन दो प्रकार से होता है एक वाह्य दूसरा आभ्यन्तर बाह्य वाह्य के चक्षु द्वारा होता है और आभ्यन्तर अन्तःकरण के चक्षु द्वारा होता है उसीको मानसिक कहते हैं और उसी सेवा का नाम अष्टयाम मानसी सेवा है यह साधन साध्य नहीं है यह श्रीयुगलसरकार के कृपासाध्य है और इसी अवस्थाका वर्णन श्रीगीता में ६ अ० २८ श्लो० में भगवान् स्वयं कहे हैं। सुखेन ब्रह्म संस्पर्श मत्यंतं सुखमश्नुते । अर्थात् सुखपूर्वक जीवात्मा परमात्मा का सम्यक् प्रकार से स्पर्श करके अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है याने भोगता है। इसी वचन की सिद्धि है। ब्रह्मसूत्र वेदान्त ४ अ० ४ पा० २० वां सूत्र में भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च । अब सबका स्पष्टी करण २९३ सूत्र में है ।

मूकैर्बधिराणां वार्ता कथमन्यदिच्छति सूत्र २९३

अर्थ—गूंगों के साथ बहिरों की वार्ता और कैसे अन्य वस्तु

को इच्छा कर सकता है। अब इसका तात्पर्य यह सूत्र गोदादेवी जी के प्रबन्ध का है अर्थात् गोदादेवीजी विरहावस्था को प्राप्त हैं और उनकी मातायें समझाती हैं ज्ञान परमार्थ का विषय है कि इतनी त्वरा न करो प्रारब्ध शेष होने पर तुम वहां जावोगी और भगवान् तुम को बैकुण्ठ में मिलेंगे इस शरीर के छूट जाने पर इत्यादि बातें सुनकर गोदादेवीजी कहती हैं। हे माताओ इस विषय में हमारा क्या दोष है दोष है उस दिव्य मंगल विग्रह का यह व्यंग स्तुति है याने प्रेमी सरकार को कहते हैं कि इनके नेत्र में जादू है टोना है किसीको टोनहा बनाना दोष है परंच वह दोष नहीं माना जाता है वह तो व्यंगरूप प्रशंसा मानी जाती है और इन बचनों से सरकार और प्रसन्न होते हैं क्योंकि ज्ञानदशा में नेम प्रधान रहता है और जब प्रेम की दशा प्राप्त होती है तो नेम गौण हो जाता है और प्रेम प्रधान हो जाता है।

प्रेम प्रवाहे सम्प्राप्ते न विधिर्न च कर्मच।
(विष्णुपुराण)

श्रीगोदादेवीजी कहती हैं कि हे माताओ जिस दशा में हम हैं वह दशा आप लोगों को प्राप्त नहीं है इसीसे हमको आपलोग समझाती हो हमारी दशा सुनो उस प्रभू की अति शोभायमान दिव्य मंगलमय मूर्ती हमारे अन्त:करण चित्तचत्वर में निरन्तर चमकती रहती है इस ध्येयाकार दशा में मैं उनसे पूर्णरूप से संश्लेष करती हूँ याने संयोग करती हूँ जब कभी विश्लेष होजाता है याने वियोग होजाता है तो विरह से पगली सरीखी हो जाती

हूँ तो फिर संयोग हो जाता है यही हमारी दशा है। हम आप-लोगों से बोलने में गूगी हूँ और वार्ता सुनने में बहरी हूँ अर्थात् आपलोगों से बोलने का और बात सुनने की इच्छा नहीं चाहती है। कथमन्य दिच्छति। अर्थात् उस प्राणप्रीतम को छोड़कर दूसरे कुछ वस्तु की इच्छा कौन करे। यह सब भावना का विषय है। भावनामय शरीर से श्रीयुगलसरकार की प्राप्ति और भावनामय बातों से वार्ता है। श्रीमानस चौपाई—यह गुण साधनतें नहि होइ। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोइ॥ प्रेम की बारह दशा है अन्तिम बारहवीं दशा का नाम संतृप्त दशा है और उसीको पूर्ण अनुराग कहते हैं। सवैया—

साधन शून्य लिये शरणागत नैन रँगे अनुराग नसा है।
पावक व्योम जलानिल भूतल बाहर भीतर रूपबसा है॥
चिंतवनाहम बुद्धिमयी मधु ज्यों मखिया मनजाहिफंसा है।
वैजसुनाथ सदा रस एकहि या विधिसों संतृप्तदशा है॥

दिव्यमंगलविग्रह के विषय में एक आख्यायिका है एकबार श्रीलक्ष्मीजी कुछ उदास बैठी थीं भगवान् पूछे प्रिये उदास क्यों हो वह बोलीं भगवन् पतिव्रता का धर्म है कि वह अपना सुख कुछ न विचारे और पतिदेव को निरन्तर सुखी रखे सो हमसे नहीं होता है। जब मैं आपके श्रीचरणकमल की सेवा करने लगती हूँ तो उसके सौन्दर्य्य माधुर्य्य सुकुमारता सुगन्धता से स्वयं आनंद में मग्न हो जाती हूँ और इसी प्रकार से सर्वांग सेवा विहारादिक में भी स्वयं आनन्द से मग्न हो जाती हूँ और इसीसे उदास हूँ कि

हमसे पातिव्रत धर्म का पालन यथार्थ नहीं होता है। श्रीभगवान् बोले प्रिये हम क्या करें, हमारा समस्त विग्रह ही आनन्दमय है जो इसकी सेवा करता है, जो ध्यान धरता है जो यजन स्मरण करता है वह सब स्वयं आनन्द में मग्न होजाता है क्योंकि जो कोई हिमालय में जायेगा वह शीत से अवश्य मग्न होगा जो प्रज्वलित अग्नि के समीप जायेगा वह अवश्य तप्त हो जायेगा और जो भगवत् विग्रह के समीप में जायेगा वह अवश्य आनंद में मग्न हो जायेगा क्योंकि वहां तो आनन्द ही आनन्द है हम आपके धर्म की रक्षा के लिए दुःखमय कैसे हो जाऊँ यह कह कर भगवान् हंस दिए और मुसकराती हुई श्रीलक्ष्मीजी अंक में जाकर बैठ गईं और श्रुति भी ब्रह्म को आनन्दमय बतलाती है। श्रुतिः आनन्दं ब्रह्मेति। आनन्द एव ब्रह्म नाम। आनन्द प्रचुरत्वात् आनन्दमयं ब्रह्मेति प्रसिद्धार्थः। श्रीमानसजी चौपाई—

चिदानन्द मय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी॥

एवं सर्व तत्वोपदेशं कुर्यात् यदा शिष्यः आधीनतया वारम्वारं याश्चां कुर्यात् तदोपदेष्टा उपदेशं कुर्यात् स्वयं धनाशया। वा गुरुत्व प्रागटनाय वार्तां यत्र तत्र पात्रापात्रे ह्यविचार्य्य करोति तदा दोषः स्यात् एवं सति नस्वस्मिन् सिद्ध्यति न चान्यस्मिन् सिद्ध्यति पुनःनिंष्ठाँ विना श्री गुरुप्रसन्नतां विनेदं तत्वं अति दूरस्थं न सुलभ स्यात्। केवलं वाहय वृत्त्या कथनात् श्रवणात् न सिद्धिमाप्नोति इति सत्यं सत्यं सत्यं ज्ञेयं पुनः संस्कारपंचकं विना परं

यावन्न महतां रीतिस्तदुल्लंघनं तत्मात्सौ वाधकं स्यात् तस्मादाचार्य्याणां ग्रंथानुरूपेण भावभावनादि सर्वं कर्तव्यं यद्वा स्वानुभवेन बिलक्षणं कर्तुमीहेत तदा परम्परया ऽनुकूलमेव कुर्य्यात् यस्मिन्नाचार्य्याणां मते विरोधोत्पत्तिर्भवति तन्न करणीयं। पुनः प्रकृतिवसान्नानाऽपराधाः सहजं भवन्ति, तेभ्यो भयं मत्वा बिचारेण वर्तेत परंतु परमनिर्मलज्ञानेन शुद्धांतःकरणे जाते स्वापराधंपश्यति। महत् अपराधस्त्वय-मेव यत्सर्वजीवानां हितकारकाचार्य्या तेषां शिक्षा वचनस्य स्वयं ज्ञानेनावज्ञाकरणं तन् महत्पातकं स्यात्। यदैवं प्रकारेण वर्तेत तदा भाव भावनादि सर्वंस्फुरति।

अर्थ—इस प्रकार से सब तत्वों का उपदेश आचार्य्य कब करें जब शिष्य अत्यन्त आधीन होकर आचार्य्य सेवामें तत्पर होकर जब बारम्बार याचना करे तब उपदेश देनेवाले आचार्य्य को उपदेश देना चाहिए। स्वयं अपने मन से या धन के लालच से या अपना आचार्य्यपना प्रकट करने के लिए पात्र=योग्य अपात्र=अयोग्य के बिना विचार किए जहाँ तहाँ इस संप्रदायके रहस्य का वार्तालाप किया करते हैं वह दोष है नहीं करना चाहिये ऐसा करने से भाव भावना की सिद्धि न अपने को होती है न दूसरे को और फिर निष्ठा के बिना और आचार्य्य की प्रसन्नता के बिना यह तत्व अत्यन्त दूर है सुलभ नहीं है। और हृदय में मन में वह बात न हो केवल देखौवा कहने और सुनने से सिद्धि नहीं प्राप्त होती हैं अर्थात् भाव भावना का उदय नहीं

होता है इस बात को सत्य सत्य सत्य जानो और फिर पंचसंस्कारों के बिना और भी जो महानुभावों की रीति हैं उसका उल्लंघन हो जाता है ऐसा मनमुखी कार्य्य करने से उस भावभावनाकी प्राप्ति में बाधा पड़ती है तिस कारण से आचार्य्यों के उपदेश के ग्रन्थों के मुताबिक सब प्रकार का भाव भावनादि करना चाहिये यदि आचार्य्य की कृपा से अपने अनुभव मे भावभावना का कुछ विलक्षण उदय होजाय और उदय के अनुसार करना चाहे तो कर सकता है परंच वह संप्रदाय और आचार्य्यों के अनुकूल हो और जिस कार्य्य में आचार्य्यों के मत से बिरोध पड़ता हो उसका कभी भी नहीं करना चाहिए। फिर अविद्या के कारण अनेकों प्रकार के अपराध स्वाभाविक हो जाते हैं उन अपराधों से डरना चाहिए और बिचारकर काम करना चाहिए। परंच अपना किया हुआ अपराध कब सूझता है जब परम निर्मल ज्ञान से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब सूझता है। सबसे बड़ा अपराध तो यह है कि जो सब जीव मात्र के उपकार करनेवाले आचार्य्य हैं उन महान् आचार्य्यों का जो शिक्षामय उपदेश को न मानना याने अपने को ज्ञानी मानना और उस ज्ञान के अभिमान में आचार्य्य के वचन का निरादर करना वह महान् पाप है नहीं करना चाहिए। जब इस प्रकार से रहेगा अर्थात् आचार्य्यों के वचन का आदर करेगा तब भावभावना इत्यादि सब उसके अन्तःकरण में उदय होंगे।

कोभावः काभावनाच कृपां कृत्वा वद प्रभो ॥ यज्ज्ञा-

त्वा जानकीरामो प्राप्नोति नात्रसंशयः। भावस्तवत्र लौकिकानां इव सम्बन्धः भावना तद्रहस्ये चिराम्॥ अथभावपरत्वं श्लोकः ज्ञानस्यच पराकाष्ठा ब्रह्मतत्वाववोधनम्। तत्ववोधस्य सा सीमा यत्तदानन्दनिर्भरः॥ आनन्दनिर्भरस्यापि सीमा श्रीमद्रघूत्तमे। सम्बन्धभावनोत्पन्ना दृढाप्रीति स्तुतादृशी॥ प्रश्नः तस्यभावस्य किम्प्रकारः उत्तरं नित्यपारमार्थिकैकरसाऽखंडाऽनंतवैभवानुरागसुषमा माधुर्य्यादिभिर्दिव्यगुणैः सम्पूर्णा श्रीमिथिला तथा श्रीअयोध्या तत्र द्वौ नृप समाजौ तयोर्मध्ये जीवः आचार्य्यदत्त सम्बन्धेनात्मनः तवरूप निरन्तरं चिन्तयेत् तस्य निधिध्यासेन आवेशः जन्म पर्यन्तं सिद्धेर्मर्य्यादा प्रश्नः किम्प्रकारेण चिन्तयेत् उत्तरं अमुकीमे माता। अमुकोमेपिता अमुको मे भ्राता अमुकी मे भगिनी एवं सम्बन्धानुसारेण द्वयोः समाजयोरात्मानं सम्भावयेत्।

एवंयश्चिन्तयेन्नित्यमात्मानं शुद्धचेतसा।
देहान्ते जानकीरामसान्निध्यं प्राप्नुयान्नरः॥

प्रश्न—हे श्रीस्वामीजी कृपा करके कहिये कि भाव किसको कहते हैं और भावना किसको कहते हैं।

उत्तर—भाव भावना वह पदार्थ है कि जिसके जानने से श्रीसीतारामजी की प्राप्ति अवश्य होती है इसमें कोई संदेह नहीं है। और भाव दो प्रकार का होता है प्राकृत और दिव्य लौकिक, और

अलौकिक। तो जैसे लोकमें सम्बन्ध है पिता पुत्र, स्वामी सेवक, पति पत्नी, इत्यादि। एवं प्रकार का सम्बन्ध भगवान से करना यही भाव कहाता है और जिस तरह से लौकिक सम्बन्ध बन्धन कारक होता है उसी तरह से दिव्य सम्बन्ध, मोक्षकारक होता है। और श्रीयुगलसरकार का जो रहस्य है अष्टयाम सेवा इत्यादि उसके चिंतवन करने को भावना कहते हैं। अब भाव पर श्लोक का अर्थ सुनिये—ज्ञान का पराकाष्टा है माया जीव ब्रह्मका यथार्थ बोध होना और उस बोध की अन्तिम सीमा याने अन्तिम सिद्धि है आनन्द में मग्न रहना और आनन्द में मग्न रहने की अन्तिम सीमा है श्रीयुगलसरकार में जैसा सम्बन्ध भावमा है उसके अनुकूल दृढ़ प्रीति का उत्पन्न होना।

प्रश्न—उस भाव का क्या प्रकार है अर्थात् वह सम्बन्ध किस तरह से किया जायेगा।

उत्तर—नित्य, परमार्थ स्वरूप अखंड एकरस अनन्त वैभव और अनन्त अनुराग सुषमा अर्थात परमाशोभा माधुर्य्य आदि दिव्य गुणों से युक्त सम्पूर्ण श्रीमिथिलाजी तथा श्रीअयोध्याजी हैं उस युगलधाम में दो नृप समाज हैं अर्थात् श्रीमिथिलाजी में श्री मिथिलेश महाराज और श्रीअयोध्याजीमें श्रीचक्रवर्तिजी महाराज का समाज है। इन दोनों नृपसमाजों के मध्य में जीवात्माको जिस प्रकार का आचार्य्य सम्बन्ध दिये हों अर्थात् जीवात्मा का जैसा भावनामय स्वरूप बताये हों वैसा अपने स्वरूप का निरन्तरचिंतवन करता रहे, भाव यह है कि पहले स्वस्वरूपकोज्ञान होता है तब

परस्वरूप में बुद्धि जाती है एवं ता स्व स्वरूपके अनुकूल,श्रीयुगल सरकार का अष्टयाम निरन्तर मानसी तथा वाह्य सेवा किया करे इस प्रकार से निरन्तर निदिध्यासन याने बारंबार बराबर जो आजन्म याने जबतक यह शरीर रहे तबतक निरन्तर चिन्तवन बना रहे तो निश्चय देहान्त होने पर श्रीसाकेत में सायूज्य मुक्ति याने अखंड श्रीयुगलसरकार,का नित्यसेवा प्राप्त हो जायेगा यह आचार्य्य श्रुति स्मृति सबका सिद्धान्त है।

प्रश्न—सम्बन्ध को किस प्रकार से चिंतवन करे।

उत्तर—अमुकी हमारी माता है अमुक हमारे पिता हैं अमुक हमारे भ्राता हैं अमुकी हमारी भगिनी हैं इस तरह से आचार्य्य के दिए हुए सम्बन्ध के अनुसार दोनों नृपसमाजों में अपना सम्यक् प्रकार से सम्बन्ध को माने।

श्लोकार्थ—इस तरह से शुद्ध मन से जो निरन्तर स्वस्वरूप परस्वरूप श्रीयुगलसरकार का चिन्तवन किया करेगा वह देहान्त होने पर श्रीयुगलसरकार के समीप में पहुंच जायेगा अर्थात् श्री-साकेतधाम में नित्य अखंड कैंकर्य्य को प्राप्त हो जायेगा।

इति श्रीआत्मसम्बन्धदर्पणे श्रीजानकीघाट निवासी रसिकाधिराज संतशिरोमणि परमवैराग्यवान माधुकरिवृतिस्थ अनन्त श्रीमधुकर श्रीसियाशरणजी महाराज के श्रीचरण कमलरजोनुजीवी पं० जानकीवल्लभशरणकृता आनन्दवर्द्धिनी टीका समाप्ता।